ल - जून 1992 वर्ष : 24 अंक 2

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

एन. एम. आर. — परमाणु से मानव तक

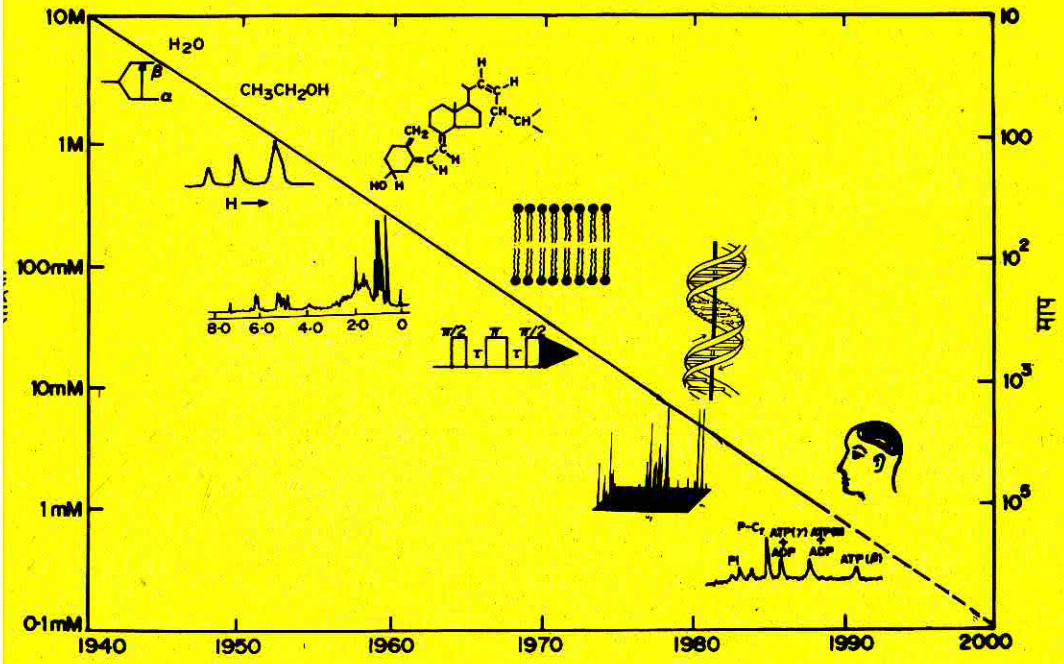

** नोबेल पुरस्कार तक का सफर **

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक **वैज्ञानिक** का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठि वार्ता एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगित का आयोजन करती है ।

परिषद की सदस्यता एवं **वैज्ञानिक** पत्रिका का शुल्क (रु.)

	परिषद सदस्यता			वैज्ञानिक शुल्क 5 रु. प्रति	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

1. वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा ।
2. वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक निःशुल्क भेजी जाती है ।
3. सभी शुल्क **हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से **डिमांड ड्राफ्ट** (बम्बई) अथवा **भारतीय पोस्टल आर्डर** द्वारा ही भेंजे । **कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क** न भेजें ।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में **वैज्ञानिक** अग्रणी है । देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं । इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित है । पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें. मी. x 21 सें. मी. है ।

विज्ञापन की दरें	:	(एक प्रति के लिए)
अंतिम आवरण	:	रु.2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु.2,000/-
पूरा पृष्ठ	:	रु.1,500/-
आधा पृष्ठ	:	रु.800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1992

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिन्दी विज्ञ लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रितया हैं । लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए । टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें । चित्रों को सफेद कागज पर का रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें ।

पुरस्कार : प्रथम रु.1500/-
द्वितीय रु.1000/-
तृतीय रु.500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिन्दी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष पुरस्कार** - प्रत्येक रु.300/- के दिये जायेंगे । अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें ।

अंतिम तिथि : 31 अक्तूबर 1992

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं **वैज्ञानिक** की संपत्ति होंगी । **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे **वैज्ञानिक** हेतु अन्य रचनाएं भी आमंत्रित हैं । सभी प्रकाशित रचनाओं पर मानदेय दिया जाता है ।

पत्राचार का पता : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, परमाणु ईंधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई - 400 085.

वैज्ञानिक

वर्ष: 24 * अंक 2
अप्रैल - जून 1992

- व्यवस्थापन मंडल -
डॉ. शिव प्रकाश गर्ग
श्री ज्ञानोत्तमलाल गोस्वामी
श्री ललित कुमार
श्री राम निवास आर्य
श्री इंद्र कुमार शर्मा
श्री दीप प्रकाश

- संपादन मंडल -
डॉ. जनार्दन स्वरुप
डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
डॉ. कैलाश चंद्रभल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय

- संपादन सहयोग -
श्री हरि ओम मित्तल

- शुल्क -

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
वर्ष -	25 रु.	15 रु.
वर्ष -	70 रु.	40 रु.

- विदेश में -
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
वर्ष -	45 रु.	35 रु.
वर्ष -	125 रु.	95 रु.

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
	संपादकीय	3
	लेख	
1.	आखिर, पारकिन्सन रोग क्यों होता है ? - सुभाष चन्द्र लखेड़ा	5
2.	सौर ऊर्जा : भविष्य की आशा - वासुदेव पालीवाल	10
3.	विरल एवं उच्चतापसह धातु : एक अवलोकन - अशोक कुमार सूरी	16
4.	खनिज तेल मूल्यांकन एवं महत्व - योगेन्द्र कुमार शर्मा	22
5.	हृदय रोगों से बचाव में हमारे आहार और व्यवहार का योगदान - त्रिभुवन नाथ उपाध्याय	26
6.	रेडियोधर्मी खनिज और भूवैज्ञानिक काल निर्धारण - डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	30
7.	संगणक की अत्याधुनिक कार्यप्रणाली : यूनिक्स - अशोक ल. खांडवे	34
8.	अश्चर्य जनक भारतीय राज केंकड़ा और उसका अनोखा व्यवहार - डॉ. अनिल चटर्जी	37
9.	*प्लास्टिक* - डा. अजय कुमार चतुर्वेदी	41

- 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
- 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हि. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित है ।
- 'वैज्ञानिक' एवं हि. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा ।

कार्यालय :
'वैज्ञानिक' हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंन्ट्रल काम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई - 400 085.

10. **नीले गुलाब के विकास का वैज्ञानिक पृष्ठाधार**
- डॉ. सुबोध कुमार दत्त एवं राकेश कुमार पाण्डेय

बाल विज्ञान (विज्ञान नाटक)
हम और हमारा सौर मंडल
- डॉ. देवकी नन्दन

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों
नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद तकनीक में
अभिनव परिवर्तन
- प्रो. गिरजेश गोविल

विज्ञान समाचार
बी. ए. आर. सी. में
अन्य समाचार
कुछ फूल कुछ कांटे

टिप्पणी
नमक

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद
कार्यकारिणी समिती
1992-93

1. अध्यक्ष : डॉ. आर. चिदम्बरम्, निदेशक भा. प. अ. केन्द्र
2. उपाध्यक्ष : डॉ. दीन दयाल सूद, अध्यक्ष, ईंधन-रसायनिकी प्रभाग
3. सचिव : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, परमाणु ईंधन प्रभाग
4. सह-सचिव : डॉ. विजय कुमार मनचन्दा, विकिरण-रसायनिकी प्रभाग
5. कोषाध्यक्ष : श्री. ललीत कुमार, धातुकी प्रभाग

सदस्य
1. श्री. रामनिवास आर्य, धातुकी प्रभाग
2. श्री. हरीश कुमार कौरा, अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रभाग
3. डॉ. एस. के. सिक्का, उच्च दाब भौतिकी प्रभाग
4. डॉ. एस. ए. अहमद, वर्णक्रमदर्शिकी प्रभाग
5. डॉ. राजेन्द्र स्वरूप, ईंधन-रसायनिकी प्रभा
6. डॉ. गोविन्द प्रसाद कोठियाल, तकनीकी भौतिकी एवं प्रोटो टाइप इंजिनियरी प्रभाग

मनोनीत सदस्य
1. डॉ. आर. विजयराघवन, अध्यक्ष, परमाणु ईंधन प्रभाग

पदेन सदस्य
1. डॉ. जनार्दन स्वरूप, संपादक, 'वैज्ञानिक'
2. डॉ. शिवप्रकाश गर्ग, व्यवस्थापक, 'वैज्ञानिक'
3. डॉ. एम. आर. बालकृष्णन, अध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग
4. डॉ. वी. रामशेष, सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति
5. डॉ. राजेन्द्र नारायण भटनागर, सचिव, केंद्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद
6. श्री. रमेशचन्द्र पंत, संयोजक, राजभाषा वार्ता
7. श्री. काशीनाथ पाण्डेय, हिन्दी अधिकारी

ादकीय

कनीकी संस्कृति का विकास परमावश्यक

किसी भी राष्ट्र की प्रगति का अनुमान वहाँ पर हुए तकनीकी विकास से लगाया जा सकता है क्योंकि यही विकास उन्नत सभ्यता का गति चक्र (फ्लाई व्हील) समझा जाता है । यह गतिज ऊर्जा का स्रोत विकासशील मशीनरी को ऐसा प्रभावपूर्ण बल प्रदान करता है जो इसे एक प्रौद्योगिकीय युग में पहुंचा देता है । यह एक तथ्य है कि मानव भौतिक सभ्यता की उपलब्धियों की जिस पराकाष्ठा पर आज पहुंचा है उसमें विज्ञान की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है । परंतु यह समझ लेना कि वैज्ञानिक अत्युत्तमता (साईंटिफिक एक्सेलैंस) से समाज में स्वतः तकनीकी संस्कृति का विकास हो जाता है, सही न होगा । इसके लिए विज्ञानियों एवं प्रौद्योगविदों के मध्य कार्य करने के स्तर पर आपस में गंभीर एवं स्वस्थ विचार विमर्श आवश्यक है ।

18 वीं - 19 वीं सदी में औद्योगिक क्रांति के दौरान शिल्पकारों, कारीगरों को वैज्ञानिक जानकारी दिये जाने का सिलसिला शुरु हुआ जिसे विज्ञान पर आधरित तकनीकी युग का शुभारंभ मान सकते हैं । इससे एक ऐसी नई संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें ऐसे प्रौद्योगविदों ने, जिन्हें तकनीकी विकास हेतु वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाने की समझ थी, महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । निसंदेह इसमें सैद्धांतिक वैज्ञानिकों ने उन शिल्प वैज्ञानिकों की अभिनव क्षमताओं को कार्यरूप देने में उत्प्रेरक का काम किया ।

समय के साथ-साथ विकसित राष्ट्र आज उच्च स्तरीय तकनीकी (हाई-टैक) युग में पहुंच चुके हैं जबकि विकासशील एवं अविकसित राष्ट्र द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की तकनीकों को अपनाने में जुटे हुये हैं । प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत जैसे विकासशील देशों को यूरोप, अमरीका एवं जापान में विकसित सभी तकनीकों को अंधाधुंध अपनाने की ओर अग्रसर होना चाहिए अथवा राष्ट्र की सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उनका चयन सावधानी पूर्वक करना चाहिए । पश्चिम में विकसित उच्च स्तरीय तकनीकें हालांकि काफी फलोत्पादक (दक्ष) हो सकती हैं परंतु उनका गरीब राष्ट्रों में लगाया जाना न केवल तकनीकी पराधीनता को बढावा देता है बल्कि अपने राष्ट्र की मौलिक तकनीकों एवं अभिनव क्षमताओं के विकास में गतिरोध भी पैदा करता है । फलस्वरूप ये राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा और अधिक समस्याओं को जन्म देने में सहायक बन जाती हैं । उच्च स्तरीय तकनीकों को अपनाने के लिए समुचित ट्रेनिंग तथा औद्योगिक अवसंरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) चाहिए जिसको बनाने में कई दशक लग सकते हैं । इसके विपरीत स्वदेशी क्षमताओं का विकास भविष्य में राष्ट्र के हित में रहेगा ।

इसका अर्थ यह नही कि हर विकासशील राष्ट्र प्रत्येक आवश्यक तकनीक के विकास का कार्य शून्य से प्रारम्भ करे, तभी प्रगति कर सकता है या उन्नत सभ्यता को पा सकता है । परंतु यह बात अत्यंत आवश्यक है कि राष्ट्रीय हित में तकनीकों का चयन बड़ी सूझ बूझ के साथ किया जाना चाहिए । स्वदेशी तकनीकों को भरपूर प्रोत्साहन मिलने पर ही वे अपने सांस्कृतिक पर्यावरण में सहज रुप से पनपेगी जिसके परिणाम अच्छे होंगे ।

यूं तो कोई भी राष्ट्र हर क्षेत्र में पूर्णतः संपन्न नही है, क्योंकि प्राकृतिक स्रोतो का वितरण प्रकृति के अपने नियमों के आधार पर हुआ है । अतः तकनीकी विकास हेतु वस्तुओं का आयात निर्यात एक सामान्य प्रक्रिया कही जा सकती है । आज अधिकांश तकनीकें विज्ञान पर आधारित हैं तथा विज्ञान, वैज्ञानिक अभिधारणाएं, अभिनव विचार इत्यादि किसी राष्ट्र की सीमाओं में बंधे नही है और न ही कुछ लोगों की बपौती है । वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन एवं प्रसार भरपूर हो रहा है अतः इनका समुचित उपयोग किया जाये और राष्ट्र में उपलब्ध अभिनव क्षमताओं को पनपने का स्वस्थ वातावरण तैयार हो ।

अधिकांश विकसित राष्ट्र द्वितीय श्रेणी की तकनीकों को दूसरे राष्ट्रों को बेचते हैं ताकि उनका प्रभुत्व बना रहे । साथही इन तकनीकों के अपनाने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । उनमें से एक यह है कि तकनीकों का विकास उद्‌भव के स्थान की वातावरणीय परिस्थितियों के अनूकूल किया जाता है अतः जब ये उपकरण/तकनीकें हजारों मील दूर दूसरी जगह पर लगाये जाते हैं तब वहां पर समस्त अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में पूर्ण दक्षता के साथ कार्य नही कर पाते । इन उपकरणों में कई ऐसे सुग्राही एवं आवश्यक घटक होते हैं जिनके बारे में जानकारी सामान्यतः गुप्त रखी जाती है । इस प्रकार उपयोग कर्ता तकनीकी परतन्त्रता का शिकार हो जाता है । प्रमुख घटकों/पदार्थों पर यदा कदा रोक लगाकर विकसित राष्ट्र तकनीकी शोषण की प्रक्रिया जारी रखते हैं । फलस्वरूप इन आवश्यक घटकों/पदार्थों की अनुपस्थिति में या तो ये उपकरण/तकनीक व्यर्थ हो जाते हैं अथवा निर्दिष्ट क्षमताओं के साथ उनका उपयोग नही हो पाता है । इसके अलावा हर राष्ट्र के अपने आयात-निर्यात के नीतिनियम के अनुसार इन घटकों/पदार्थों की उपलब्धता में अतिरिक्त विलम्ब भी हो जाता है ।

ऐसी स्थिति से बचने के लिए समय रहते हमें सचेत होने की आवश्यकता है । इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा तकनीकी संस्कृति का विकास । इस विकास के लिए पदार्थ विज्ञान उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है जिसे इसकी आधार शिला मान सकते हैं अतः इस पहलू पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए ।

आवश्यकता इस बात की है कि जब कभी भी किसी तकनीक/उपकरण का आयात किया जाय अथवा विचाराधीन हो तो उसी समय हमें उसकी मूल अभिकल्पन पद्धति तथा उसमें प्रयुक्त होने वाले पदार्थ/परमावश्यक घटकों को समझना होगा । उनके, अपने देश की स्थानीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में विकास को महत्व देना होगा । साथ ही हमें उन आवश्यक घटकों एवं पदार्थों के विकास के बारे में भी विचार कर लेना होगा जिन पर कुछ समय बाद रोक लगने की संभावना हो । इसलिए इनके विकास के काम को एक प्रवीण तथा दक्ष वैज्ञानिकों एवं शिल्प वैज्ञानिकों के समूह को अलग से सौंप दिया जाना चाहिए ताकि समय पर विकास कार्य पूर्ण हो सके एवं आवश्यकता पड़ने पर इन घटकों/पदार्थों का उपयोग आयातित उपकरण में सहजता से किया जा सके । यह आवश्यक होगा की यह समूह उन उपकरण/तकनीक से संबंधित वैज्ञानिकों के साथ मिलकर घटकों की कार्यप्रणाली, प्रौढ़ता एवं बारीकी को पूर्णतः समझ लें । परंतु दुर्भाग्यवश यह देखा गया है कि उपकरण के आते ही विकास कार्य की प्रक्रिया या तो रुक जाती है या उपयुक्त प्रोत्साहन न मिलने के कारण धीमी पड़ जाती है ।

यहां पर यह उल्लेखनीय होगा कि तकनीकी विकास प्रक्रिया को सक्रिय रखने हेतु हमें अपनी मानसिकता तथा कार्यमूल्यांकन पद्धति में आवश्यक परिवर्तन करने होंगे । विकास कार्यों को सैद्धांतिक विज्ञान की तुलना में गौण न समझें क्योंकि राष्ट्र के विकास में ये दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं ।

* * *

प्रस्तुत अंक में अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में पुरस्कृत लेखों को पाठकों के हित को ध्यान में रखते हुये एक साथ प्रकाशित किया गया है । इन लेखों का यथावश्यक संक्षिप्तिकरण भी किया गया है । इस बार बाल विज्ञान के अंतर्गत विज्ञान नाटक के माध्यम से जानकारी देने का एक नया प्रयास किया गया है । पाठकों से इस अंक के संबंध में प्रतिक्रियाएं अपेक्षित एवं आमंत्रित हैं ।

डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल

खिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

ाखिर, पारकिन्सन रोग क्यों ता है ?

- सुभाष चन्द्र लखेड़ा
रक्षा शरीर-क्रिया एवं संबद्धविज्ञान संस्थान (डिपास),
दिल्ली छावनी - 110 010.

पारकिन्सन रोग से ग्रस्त व्यक्ति के सिर और शरीर के अन्य अंगों में कंपन होता है और पेशियों पर नियंत्रण रखना उसके लिये कठिन हो जाता है । मस्तिष्कीय रोग पारकिन्सन एक ऐसी अपंगता है जिसमें तंत्रिका संचारक द्रव्य उत्पन्न करने वाली कोशिकाएं धीरे धीरे नष्ट होती जाती हैं तथा पेशियों पर नियंत्रण समाप्त होता जाता है । इस रोग के कारण, उपचार और रोकथाम के लिए अनेक शोधकार्य चल रहे हैं जिनकी वर्तमान अवस्था पर इस लेख में प्रकाश डाला गया है ।

अंतरिक्ष में नगर बसाने, कारखाने लगाने एवं खेती ा अथवा अंतरिक्ष युद्ध की कल्पना में डूबा हुआ मानव दाय आज भी कई ऐसी बीमारियों का शिकार बन जाता जनका उसके पास कोई ठोस उपचार नहीं है । ऐसी ही बीमारी का नाम है - पारकिन्सन रोग ।

प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था के बीच कहीं अचानक ट होने वाली इस बीमारी के लक्षणों का विस्तृत वर्णन प्रथम सन् 1917 ई. में जैम्स पारकिन्सन नामक वैज्ञानिक केया । फलस्वरुप, इस बीमारी को तबसे "पारकिन्सन " कहा जाने लगा । इस बीमारी के संपूर्ण लक्षणों की पूरी कारी होने के बावजूद आज तक वैज्ञानिक उन कारणों को खोज पाए हैं जो इस बीमारी को पैदा करते हैं ।

पारकिन्सन रोग से पीड़ित व्यक्ति के सिर एवं शरीर विभिन्न अंगों में कम्पन होता है । ऐसे रोगी को खाना ा, कपड़े पहनने, बातचीत करने तथा चलने में कठिनाई ा है । दरअसल, ऐसा रोगी कोई भी ऐसा कार्य ठीक ढंग रने में असमर्थ होता चला जाता है जिसके लिए पेशियों ामान्य नियंत्रण बनाए रखना जरूरी होता है । धीरे-धीरे ति और अधिक बिगड़ती चली जाती है और इस रोग के ाम चरणों में पीड़ित व्यक्ति पूर्ण रूप से विकलांगता एवं वतया मनोभ्रंश का शिकार होकर बिस्तर पर निढ़ाल पड़ा ा है । वास्तव में इस स्थिति में पहुंचे हुए रोगी के तष्क का वह भाग लगभग पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है जो र शरीर की "ऐच्छिक गतिशीलता" का संचालन करता

जैसाकि ऊपर कहा गया है इस रोग के होने के कारणों का यद्यपि अभी अन्तिम रूप से निर्णय नहीं हो पाया है तो भी पिछले कुछ वर्षों से किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण शोधकार्यों की वजह से कुछ ऐसे तथ्यों का पता अवश्य चला है जिनसे इस रोग को कुछ हद तक समझने में प्रगति हुई है । इन अनुसंधानों से यह स्पष्ट रूप से पता चल गया है कि इस रोग के शुरू होने के कई वर्षों बाद शरीर में वे लक्षण दिखाई पड़ते है जिनसे यह पता चलता है कि व्यक्ति विशेष इस रोग का शिकार बन चुका है । मस्तिष्क के प्रभावित क्षेत्र का कई वर्षों तक धीरे-धीरे व्यपजनन (क्षय) होने के बाद ही ऐसे शारीरिक लक्षण प्रकट होते हैं जो इस रोग का शिकार होने की सूचना देते हैं । वैज्ञानिकों का कहना है कि किसी भी कारण से शुरू होने वाली इस बीमारी के कारण मस्तिष्क में होने वाली "अप्रत्यावर्ती व्यपजनन" की प्रक्रिया किसी व्यक्ति विशेष में संभवतया बचपन अथवा किशोरावस्था में प्रारंभ हो जाती है । अब वैज्ञानिक उस पर्यावरणीय घटक अथवा कारक (जैसे एक विषैला रसायन, विषाणु अथवा आवश्यक खनिजों का असंतुलन) की खोज में जुटे हुए हैं जो व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में इस विनाश श्रृंखला को शुरू करता है और कई वर्षों बाद उस व्यक्ति को एक बेबस एवं निरर्थक जिन्दगी जीने को मजबूर करते हुए मौत की तरफ ले जाता है ।

वास्तव में इस बीमारी का कारक मस्तिष्क स्तंभ (ब्रेन स्टैम) के ऊपरी हिस्से में काला द्रव्य (सब्सटैन्शिया नाइग्रा) समूह की कोशिकाओं को अपना शिकार बनाता है । इस

समूह की कोशिकाओं में न्यूरॉमेलेनिन नामक काला रंजक (पिगमेन्ट) होता है जिसके कारण इस समूह को उपरोक्त नाम मिला है । सब्सटैन्शिया नाइग्रा से अग्रमस्तिष्क के आधार में स्थित "स्ट्राइटम" को तंत्रिका तंतु जाते हैं जो डोपामीन नामक तंत्रिका संचारक को स्रावित करते हैं । तंत्रिका संचारक मस्तिष्क में पाए जाने वाले उन रसायनों को कहते हैं जो एक उत्तेजित तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) का संदेश उन तंत्रिका-कोशिकाओं तक पहुंचाते हैं जो इसके सम्पर्क में रहती हैं । यद्यपि स्ट्राइटम का मस्तिष्क के कई भागों से संबंध है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब्सटैन्शिया नाइग्रा से डोपामीन की नियमित एवं स्थिर आपूर्ति के बिना "कई तरह की शारीरिक गतियों को प्रारम्भ एवं नियंत्रित करने वाली" अपनी भूमिका का ठीक प्रकार निर्वाह करने में असमर्थ हो उठता है । पारकिन्सन रोग में डोपामीन स्रावित करने वाली कोशिकाएं धीरे-धीरे नष्ट होती चली जाती हैं और ठीक उसी अनुपात में "स्ट्राइटम" भी पंगु होता जाता है ।

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार यह बीमारी प्रति हजार एक व्यक्ति को होती है । कम उम्र वाले व्यक्तियों की अपेक्षा यह बीमारी पचास वर्ष से ऊपर वाले व्यक्तियों को अधिक होती है । एक ही परिवार के दो व्यक्तियों को यह बीमारी हो सकती है किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि यह एक आनुवंशिक पैतृक रोग है । यह कतई जरूरी नहीं है कि जुड़वां बच्चों में से दोनों ही इस बीमारी के शिकार बनेंगे ।

प्रथम विश्वयुद्ध के तुरंत बाद के कुछ वर्षों में अमरीका सहित कई देशों में बड़े पैमाने पर "विषाणु संक्रमण" के कारण मस्तिष्क शोथ की बीमारी फैली । इस भयानक बीमारी के रोगी बड़ी संख्या में मरे । जो बच गए इन रोगियों में से कुछ में वर्षों बाद पारकिन्सन रोग से मिलते-जुलते लक्षण प्रकट हुए । इन सब बातों से ऐसा आभास हुआ कि विषाणु जनित संक्रमण के कारण ही संभवतया रोगी के मस्तिष्क में वह प्रक्रिया शुरू हुई जिसके कुप्रभाव रोगी में वृद्धावस्था में पहुंचने के बाद देखने को मिले । इस तथ्य ने वैज्ञानिकों को यह सोचने की दिशी दी कि संभवतया पारकिन्सन रोग भी मस्तिष्कीय विषाणु संक्रमण के कारण होता है । बावजूद इसके इस विचार की

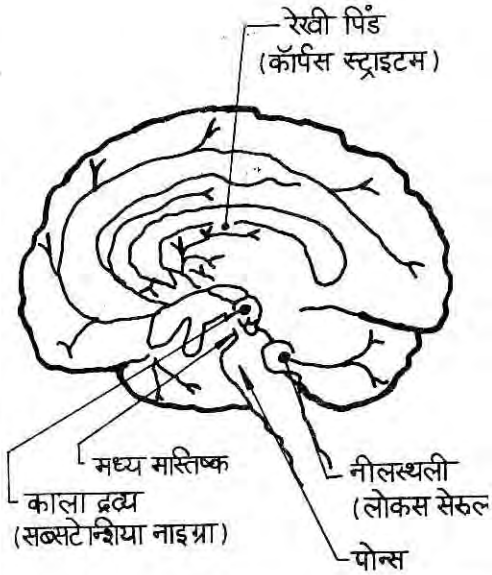

चित्र : पारकिन्सन बीमारी में काला द्रव्य (सब्सटैन्शिया नाइग्रा) में कोशिकाओं के व्यपजनन के कारण रेखी पिंड (कार्पस स्ट्राइटम) को डोपामीन की आपूर्ती नही हो पाती है ।

पुष्टि के लिए वैज्ञानिक आज तक कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं जु पाए हैं ।

अभी कुछ वर्षों पहले तक दक्षिणी प्रशान्त में स्थि उवाम द्वीप में पारकिन्सन बीमारी से काफी व्यक्ति पीड़ित हो थे । वहां के मूल निवासियों में इसके अलावा कई अ तंत्रिकीय बीमारियां भी देखने को मिलती थी । वहां रह अमरीकियों की तुलना में उनमें पारकिन्सन रोग होने संभावना पचास गुना अधिक थी । वहां के मूल निवासि को यह रोग अपेक्षाकृत कम आयु में हो जाता था और मनोभ्रंश के शिकार हो जाते थे ।

बहरहाल, सन् 1950 ई. के बाद यहां के मू निवासियों ने तेजी से अमरीकियों के प्रभाव के कारण पश्चि जीवन पद्धति अपनानी शुरू कर दी (यहां अमरीकियों के बड़े फौजी ठिकाने हैं) । इतना ही नहीं, इनमें से कुछ मू निवासी उवाम छोड़कर कैलिफोर्निया चले गए हैं । जो लो द्वीप में शेष बच गए हैं, उन्होंने पारम्परिक निर्वाह योग्य खे के तरीकों को छोड़कर आयातित खाद्य सामग्री को खा शुरू कर दिया है । आज ग्वाम के इन मूल निवासियों व

कम तंत्रिकीय बीमारियां होती हैं और उनमें पारकिन्सन
ी पहले की अपेक्षा कही कम देखने को मिलता है ।

उपरोक्त अवलोकनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि
ीमारी उनके पारम्परिक खाद्य सामग्री मे निहित किसी
ीय घटक से संबंधित थी जिसका अभी तक स्पष्ट रुप
ा नही चल पाया है । यूं ताड़ सदृश्य पेड़ों से एकत्रित
ाने वाली ' 'साईकेड गुठली" एक कारण प्रतीत होती
यह गुठली ग्वाम के निवासियों की पारम्परिक खाद्य
ी में शामिल है । इनको पीसकर आटा बनाया जाता
अलबर्ट आइनस्टीन कॉलेज ऑफ मेडीसन के वैज्ञानिक
स्पैन्सर ने इस गुठली में एक ऐसे विषाक्त पदार्थ की
की है जो विशेष रूप से तंत्रिका कोशिकाओं को हानि
ाता है और बन्दरों में पारकिन्सन रोग से मिलते-जुलते
ा पैदा करता है । दूसरी संभावना यहां की मिट्टी में
यम एवं मैग्नीशियम के निम्न स्तर तथा एल्यूमिनियम
च्च स्तरों के साथ जुड़ी हुई है । वाकायामा मेडीकल
ज, जापान के योशीरों यासो एवं मेरीलैंड स्थिल नेशनल
ट्यूट ऑफ हेल्थ के वैज्ञानिक जी. कार्लेटन एवं जी
इस दूसरी संभावना पर अनुसंधान कार्य में जुटे हैं ।

मकगिल विश्वविद्यालय कनाडा में कार्यरत वैज्ञानिक
बारब्यू ने अपने देश में कुछ ऐसे क्षेत्रों का पता लगाया
ां उत्तरी अमरीका महाद्वीप के अन्य भागों की अपेक्षा
न्सन रोग अधिक होता है । ये क्षेत्र ऐसी मिलों के
पास हैं जहां कागज बनाने के लिए लकड़ी को संसाधित
जाता है । फिनलैंड एवं अमरीका के कुछ भागों में भी
ंबंध देखने को मिला है । बहुत से व्यक्तियों का कहना
औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व ऐसी किसी बीमारी का वर्णन
मिलता है ।

वैनकूवर की यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलूम्बिया
नाल्ड कालने के अनुसार जैसे-जैसे हमारी उम्र बढ़ती है,
धीरे-धीरे मस्तिष्कीय कोशिकाएं खोते जाते हैं । परंतु
ा संपूर्ण मस्तिष्क उनको एक ही दर से नहीं खोता है ।
अनुसार किसी जीव विष या विषाणु के सम्पर्क में आने
ारण मस्तिष्क को हानि पहुंच सकती है किन्तु काफी
तक मस्तिष्क के उस हिस्से का शेष बचा हुआ भाग
तिग्रस्त भाग के दायित्वों अथवा कार्यों को करता रहता
है । अतः तत्काल इस हानि को पहचानना संभव नहीं है । बहरहाल, मस्तिष्क अपनी इस कमी को पूरा करने के लिए जितना अधिक प्रयास करता है उतना ही उसके और अधिक क्षतिग्रस्त होने की संभावनाओं में वृद्धि होती चली जाती है ।

कुल मिलाकर, अब तक किए गए शोधकार्यों से यही संकेत मिलते हैं कि पारकिन्सन बीमारी के लक्षणों के प्रकट होने से काफी पहले के उस वातावरण के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है जिसमें पीड़ित व्यक्ति रहा हो । इतना ही नहीं, यह मालूम करना भी जरूरी है कि कोई जीव-विष अथवा पर्यावरणीय कारक संपूर्ण तंत्रिका तंत्र को हानि पहुंचाने के बजाय क्यों केवल इसके अन्दर मौजूद एक छोटे से कोशिका समूह को ही अपना निशाना बनाता है ।

आज से कोई पांच वर्ष पूर्व घटित एक घटना की वजह से पारकिन्सन बीमारी पर किए जा रहे अनुसंधान कार्यों को एक नई दिशा मिली है । कैलीफोर्निया के तंत्रिका चिकित्सकों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अचानक ही उनके पास पारकिन्सन बीमारी के लक्षणों वाले कम आयु के अधिक रोगी आने लगे । पूछताछ करने से मालूम हुआ कि ये सभी कम आयु वाले रोगी हिरोइन का प्रयोग करते थे और अधिक खोजबीन करने से मालूम हुआ कि इन सभी को इस व्यसनकारी औषधि की संश्लेषित किस्म की आपूर्ति उत्तरी कैलीफोर्निया का एक अवैध विक्रेता करता था । जब इस व्यसनकारी पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण किया गया तो पता चला कि इसमें 1 - मैथिल - 4 फेनिल - 1, 2, 3, 6 टेट्रा हाइड्रो पिरीडीन है जिसे संक्षेप में "एमपीटीपी" कहते हैं । यही वह संदूषक था जिसकी वजह से पारकिन्सन बीमारी जैसे लक्षण इन नशाखोरों में पैदा हुए थे । तत्पश्चात, पिछले कुछ ही वर्षों में "एमपीटीपी" के प्रभावों के ऊपर बहुत बड़ी मात्रा में आंकड़ों का ढ़ेर लग गया । अब तक किए गए अध्ययनों से पता चला है कि मनुष्य एवं कुछ दूसरे प्राणियों में यह विषैला रसायन चयनात्मक तरीके से सब्सटैन्शिया नाइग्रा की कोशिकाओं को नष्ट करता है । यही मस्तिष्क का वह क्षेत्र है जो पारकिन्सन बीमारी में नष्ट होता है । एमपीटीपी ग्रहण करने के बावजूद जिन मनुष्यों में इसके कुप्रभावों के लक्षण दिखाई नहीं दिए, ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क का जब पोजिट्रान एमिशन टोमोग्राफी द्वारा

क्रमवीक्षण (स्केन) किया गया तो पता चला कि लक्षण प्रकट न होने के बावजूद उनका मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हुआ है । चूहों पर किए प्रयोंगों से पता चला है कि सब्सटैन्शिया नाइग्रा से स्ट्राइटम को जाने वाले संवेदी पथ का 80-90 प्रतिशत भाग नष्ट होने पर ही पारकिन्सन बीमारी के जैसे लक्षण पैदा होते है । इन खोजों से यह लगभग स्पष्ट हो गया है कि - "पारकिन्सन बीमारी की वजह से सब्सटैन्शिया नाइग्रा तुरंत ही पूरी तरह से नष्ट नहीं होता है अपितु यह एक लंबी प्रक्रिया है और तंत्रिका व्यपजनन के अंतिम चरण में ही गति नियंत्रण से संबंधित लक्षण प्रकट होते हैं ।"

स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडीसिन के वैज्ञानिक बिल लैंगस्टोन एवं उनके सहयोगी पिछले पांच वर्षों से बंदरों में एमपीटीपी के कुप्रभावों का अध्ययन कर रहे हैं । उन्हें पता चला है कि एमपीटीपी के कुप्रभावों का प्राणियों की आयु से भी संबंध है । अधिक उम्र के प्राणियों पर इसका अधिक कुप्रभाव पड़ता है ।

उपरोक्त विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि एमपीटीपी कोशिकाओं के लिए स्वयं विषालु नहीं है । वास्तव में जब यह रक्त धारा से मस्तिष्क में पहुंचता है तो ऐन्जाइम इसे 1-मेथिल - 4 फेनिल पिरीडियम आयन (एमपीपी) में बदल देते हैं । एमपीपी घनायन एक अधिक विषालु यौगिक है । नाइग्रीय कोशिकाओं के जो सीमान्त सिरे डोपामीन का स्राव करते है, वे एमपीपी घनायनों को ग्रहण करते हैं । तत्पश्चात यह विषाक्त आयन सूत्रकणिकाओं (माइटोकान्ड्रिया) के अन्दर संचित होता है । यहां यह सूत्रकणिकाओं को ऑक्सीकरण के द्वारा ऊर्जा पैदा करने से रोक कर कोशिका को प्रभावकारी ढंग से नष्ट करता है ।

एमपीटीपी को एमपीपी घनायन में परिवर्तित करने वाले ऐन्जाइमों में से एक मोनेऐमीन ऑक्सीडेस-बी (एमएओ-बी) कहलाता है । इस ऐन्जाइम का अधिकांश भाग मस्तिष्क की ग्लया कोशिकाओं में होता है । ग्लया मस्तिष्क की ऐसी गैर तंत्रिका-कोशिकाएं हैं जो मस्तिष्क में ऐसा वातावरण बनाए रखने में सहायक हैं जिसमें तंत्रिका कोशिकाएं अपना कार्य सम्पन्न कर सकें । लैंगस्टोन ने अपने शोधकार्य के दौरान देखा कि ग्लया कोशिकायें एमपीटीपी रसायन को एमपीपी घनायनों में बदलने में अत्यधिक सक्षम हैं । इसके साथ ही यह भी देखा गया है कि अधिक आ प्राणियों के मस्तिष्क में कम आयु के प्राणियों के मस्तिष्क तुलना में एमपीटीपी अधिक प्रभावी रूप में एमपीपी घना में परिवर्तित होता है । इन अवलोकनों से यही नि निकलता है कि पारकिन्सन बीमारी पर शोध कर वैज्ञानिकों को कम आयु तथा अधिक आयु के प्राणियों ग्लया कोशिकाओं के बीच संभावित भिन्नताओं का अं गहराई से अध्ययन करना चाहिए ।

बहरहाल, लैंगस्टोन अभी तक यह पता नहीं र पाए हैं कि एमपीटीपी द्वारा मस्तिष्क को पहुंचाई गई क्षति पारकिन्सन बीमारी के बीच क्या संबंध है ? सबसे लुभा अनुमान यही हो सकता है कि पर्यावरण में एमपीटीपी सद कोई विषालु पदार्थ हो सकता है । एमपीटीपी पिरिडीन स के रसायनों में से है । इस समूह में ऐसे सैकड़ों रसाय जिनमें से कुछ प्राकृतिक रूप से एवं पीड़ानाशक रसा जैसे कृत्रिम योगिकों के उपादान या संघटक हैं । लैंगस्टो एक प्राकृतिक पिरिडीन, 4 - फेनिलपिरिडीन के प्रभाव चूहों पर अध्ययन किया । इसका कोई विषैला प्रभाव पाया गया । इतना ही नहीं, जब चूहों को एमपीटीपी के स 4 - फेनिल पिरिडीन (4 - पीपी) दिया गया तो उनको क कम हानि पहुंची । दरअसल, 4 - पीपी एमपीटीपी एमपीपी आयन में होने वाली रूपांतरण में बाधा पहुंच है ।

कुल मिलाकर, वैज्ञानिक फिलहाल यह मानकर र रहे हैं कि एमपीटीपी एवं पारकिन्सन बीमारी में जरूर व आपसी संबंध हैं । उनका विचार है कि उन दवाओं अध्ययन से पारकिन्सन बीमारी के प्रक्रमों को समझने काफी सहायता मिल सकती है जो प्राणियों को एमपीटीपी विनाशकारी प्रभाव से बचाती हैं । लंदन इन्स्टिट्यूट अ साइकियाट्री के पीटर जैन्नर के अनुसार रक्तधारा में मौ एमपीटीपी का कोशिकाओं में पहुंचकर एमपीपी घनायन रुंपातरण कई चरणों में होता है । इस श्रृंखला में किसी चरण अथवा स्तर पर अवरोध उत्पन्न करके इस रूपांतरण रोका या मंद किया जा सकता हैं । डैप्रेनिल नामक एक द है जो एमएओ-बी का संदमन करती है । यह दवा बन्दरों एमपीटीपी के कुप्रभावों से बचाने में सफल पाई गई है

स्टोन इस दवा का उपयोग इन हिरोइन व्यसनियों के ार में कर रहे हैं जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से एमपीटीपी कर लिया था । इस दवा से इनमें से कुछ लाभान्वित हो ।

गत वर्षों में वैज्ञानिक एमपीटीपी के कुप्रभावों से करने के लिए जानवरों पर जिन दवाओं का प्रयोग कर , उनमें से अधिकांश पारकिन्सन बीमारी के उपचार हेतु ग में लाई जा चुकी हैं । अभी तक दवाओं द्वारा कि ए वाले उपचारों की कहानी प्रारम्भ में अति आशाजनक ु अन्त में निराशाजनक ही साबित हुई है । सन् 1960 जब पहली बार यह पता चला कि पारकिन्सन बीमारी स्तिष्क के "स्ट्राइटम" में डोपामीन की कमी से संबंध है वा के माध्यम से इसका उपचार करने की संभावना बढ़ । तरीका बहुत ही सरल एवं स्पष्ट महसूस हुआ - ष्क में डोपामीन की कमी को पूरा करना । तुरंत ही ऐसे जों को एल-डोपा दिया जाने लगा जिसका मस्तिष्क में ने पर डोपामीन में रूपान्तरण हो जाता है । प्रारम्भ में ी उत्साहवर्धक परिणाम रहा । पहली खुराक देते ही ज कुछ ही घंटों में अपनी गति को नियंत्रित करने योग्य ए किन्तु यह खुशी अल्पकालिक सिद्ध हुई । कुछ ही य बाद एल-डोपा पर आश्रित मरीज इसके अनिष्टकारी प्रभावों के जाल में फंस गए । सर्वप्रथम, उनको अपनी पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए उत्तरोत्तर दवा की मात्रा द्धि करनी पड़ी । दूसरी ओर दवा की अधिक मात्रा लेने मरीज स्किजोफीनीया से मिलते-जुलते मानसिक विकार शिकार होने लगे । न्यूयार्क स्थित कार्नेल मेडीकल सेन्टर एफ. एच. मकडोवैल पिछले 20 वर्षों से एल-डोपा लेने 100 मरीजों का अवलोकन करते रहे हैं । इन लोकनों से ज्ञात होता है कि यद्यपि प्रारम्भ में इनमें से धकांश मरीजों को अपनी बीमारी के लक्षणों से राहत ी थी किन्तु आज जो थोड़े मरीज जीवित बचे हुए हैं, में से सभी की दशा उपचार प्रारम्भ होने के समय से आज अधिक बदतर है । इन सभी मरीजों की बौद्धिक यता में गिरावट आई है और अपना संतुलन बनाए रखने नको अब अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई महसूस होती है । धकांश मरीज विश्रान्ति जैसी मानसिक समस्याओं का शिकार बन गए हैं और बहुत से "आया-गया" प्रभाव की चपेट में हैं जिसमें बिना किसी पूर्वाभास के पारकिन्सन लक्षण यकायक प्रकट अथवा समाप्त हो जाते हैं ।

बहरहाल, उपरोक्त इतर प्रभावों के बावजूद इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति अभी भी एल-डोपा लेते हैं क्योंकि अभी भी यही एक ऐसी दवा है जिसे लेने से वे कुछ समय तक निराश्रित जीवन बिता सकते हैं । लंदन स्थित इन्स्टिट्यूट ऑफ न्यूरॉलाजी के डेविड माट्सडैन ऐसी दवाओं की खोज में जुटे हुए हैं जो एल-डोपा का स्थान ले सकें अथवा एल-डोपा के साथ देने पर इसके इतर प्रभावों से छुटकारा दिला सकें । यूं अभी तक कोई उत्साहवर्धक परिणाम नहीं निकले हैं । अधिकतर दवाएं जो लक्षणों से मुक्ति दिलवाने में सफल प्रतीत हुई हैं, उनका प्रौढ़ व्यक्तियों के मस्तिष्क पर कुप्रभाव पड़ता है ।

डोपामीन की आपूर्ति के लिए किसी अधिक प्राकृतिक विधि की खोज में जुटे शोधकर्ता अब इस बीमारी के उपचार हेतु एक बिल्कुल नए तरीके पर विचार कर रहे हैं । उनका विचार है कि इस बीमारी का सही उपचार तभी संभव है जब पीड़ित व्यक्ति के मस्तिष्क के क्षतिग्रस्त भाग में डोपामीन का स्राव करने वाली कोशिकाओं को निरोपित किया जा सके । यूं प्रयोगशाला-प्राणियों में तंत्रिका-ऊतकों की अल्प मात्रा को निरोपित करने की तकनीक अब पूर्ण रुप से विकसित एवं सुस्थापित हो चुकी है । गर्भस्थ चूहों के मस्तिष्क से निकाली गई डोपामीन का स्राव करने वाली कोशिकाओं को जब ऐसे चूहों के मस्तिष्क में निरोपित किया गया जिनका सब्सटैन्शिया नाइग्रा से स्ट्राइटम को जाने वाला संवेदीपथ क्षतिग्रस्त था तो ऐसे चूहे नई कोशिकाओं के निरोपण के बाद बिल्कुल ठीक हो गए । ब्रिटेन एवं अमरीका में एमपीटीपी से कुप्रभावित बन्दरों के मस्तिष्क में जब गर्भस्थ बन्दर शिशुओं के मस्तिष्क से प्राप्त उपरोक्त तरह की कोशिकाओं को निरोपित किया गया तो उनसे एमपीटीपी के कुप्रभावों से उबरने के काफी संकेत मिले हैं ।

उपरोक्त अनुसंधानों की सफलताओं से उत्साहित होकर ओ-लिन्डवाल एवं उनके सहयोगी स्वीडन में इस तकनीक का मनुष्यों पर परीक्षण कर रहे हैं । इस समय

(शेष पृष्ठ 15 पर)

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

सौर ऊर्जा : भविष्य की आशा

- वासुदेव पालीव
मोकाती पाड़ा, जैसलमेर (रा

सूर्य एक प्रदूषण रहित ऊर्जा का अपार स्रोत है । यह ऊर्जा सूर्य के गर्भ में उपस्थित हाइड्रोजन जैसे हल्के नाभिकों के पारस्परिक संलयन से उत्पन्न होती है । विश्व के वैज्ञानिको के प्रयास इस ऊर्जा का समुचित दोहन तथा व्यवहारिक उपयोग की दिशा में केंन्द्रित हैं । प्रस्तुत लेख सौर ऊर्जा के कुछ पहलुओं को उजागर करने का एक सहज एवं सरल प्रयास है ।

आज सम्पूर्ण विश्व के सामने ऊर्जा का संकट खड़ा हो गया है । जीवन के हर क्षेत्र में, जहां किसी भी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता होती है, दिक्कत ही दिक्कत है । अब तक कोयला, तेल और पेट्रोल ऊर्जा प्राप्ति के परम्परागत साधन रहे हैं । लेकिन पृथ्वी पर इनका भंडार अत्यन्त सीमित है तथा आगामी कुछ ही दशकों में यह लगभग समाप्त हो जाएगा । ऊर्जा के इस संकट को देखते हुए पिछले तीन - चार दशकों में विज्ञान ने ऊर्जा के अपार स्रोत - नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में काफी प्रगति की है । किंतु उसकी भी अपनी सीमायें है ।

ऊर्जा के क्षेत्र में इस अनिश्चितता के कुहासे में कहीं से आशा की किरण दिखाई पड़ती है तो वह है - सूर्य । सूर्य की असीमित ऊर्जा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि हर वर्ष सारे विश्व में कोयला, पेट्रोलियम उत्पादों तथा प्राकृतिक गैस से जितनी ऊर्जा उत्पन्न होती है, उस से दोगुनी ऊर्जा मात्र उतनी धूप में होती है जो हर साल अमरीका की सड़कों पर पड़ती है । पृथ्वी पर ऊर्जा की जितनी खपत एक साल में होती है, उतनी ऊर्जा सूर्य हमें मात्र 20 मिनट में उपलब्ध करा देता है, यानि कि लगभग 13,000 गुना ।

सौर ऊर्जा का रहस्य : पृथ्वी से 9,30,00,000 मील दूर स्थित, घनीभूत गैसों का एक महातेजस्वी विराट ज्योतिपुंज, जिसे हम सूर्य कहते हैं, वस्तुतः ब्रह्मांड के अनगिनत नक्षत्रों में से एक है जिससे हर क्षण प्रकाश के रूप में बेतहाशा ऊर्जा हर ओर प्रवाहित होती रहती है । लगभग 14 लाख किलोमीटर व्यास वाले इस दहकते गोले की बाहरी सतह का ताप लगभग $6,000^0$ सेंटीग्रेड तथा केन्द्र का ताप $2,00,00,000^0$ सेंटीग्रेड है । इससे विकिरणों (प्रकाश) रूप में 3.8×10^{26} वाट (प्रति सेकंड 3.8×10^{33} अ ऊर्जा पृथ्वी पर आती है, किंतु पृथ्वी से सूर्य की दूरी बह अधिक होने के कारण इसका एक बहुत छोटा सा अं (लगभग 200 करोड़वां) पृथ्वी तक पहुंच पाता है । फिर मोटे तौर पर इस ऊर्जा का मान 1600 वाट प्रति वर्ग मी होता है, जो कि हमारी आवश्यकता से कहीं अधिक है । वै अलग - अलग स्थानों पर भौगोलिक स्थितियों की भिन्न के कारण पहुंचने वाली ऊर्जा की मात्रा भी अलग - अल होती है । हमारे देश के अधिकांश भाग सूर्य की गर्मी व दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं । भारत के कर्क रेखा पर स्थित हो के कारण प्राप्त होने वाली सौर ऊर्जा की मात्रा लगभग ए हजार अरब किलोवाट हैं । यहां के अधिकांश क्षेत्रों मे सा में 250 से 300 दिन सूर्य की धूप प्राप्त होती है, जिनव दैनिक मात्रा लगभग 5 से 7 किलोवाट घंटे प्रति वर्ग मीव होती है । यह हमारे समस्त ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा लाख गुना अधिक है ।

सूर्य से मुक्त होने वाली यह ऊर्जा दृश्य प्रकाश पराबैंगनी, अवरक्त विकिरणों तथा कास्मिक किरणों के रूप होती है, लेकिन इनमें मुख्य घटक अवरक्त किरणें ही है दृश्य प्रकाश व पराबैंगनी विकिरण का वायुमंडल में अधि प्रकीर्णन होने से इनकी ऊर्जा अपेक्षाकृत अधिक नष्ट होत है ।

सूर्य की अपार ऊर्जा का रहस्य उसमें उपस्थि हलके नाभिकों का पारस्परिक संलयन है । सूर्य के द्रव्य व लगभग 90% अंश हाइड्रोजन तथा हीलियम है तथा बाव

, अन्य तत्व हैं, जिनमें से अधिकांश हल्के तत्व है, चूंकि का केंद्र अत्याधिक गर्म है, अतः इन तत्वों की बाहरी ओं में उपस्थित इलेक्ट्रान निकल जाते हैं और तत्व प्रायः नीकृत (नाभिकीय) अवस्था में ही रहते हैं । इन कों का वेग इतना अधिक होता है कि इनके परस्पर ने से संलयन की प्रक्रिया स्वतः ही संपन्न हो जाती है । कीय संलयन की यह प्रक्रिया सूर्य के अंदर सतत ध रूप से चलती रहती हैं ।

जर्मन वैज्ञानिक बैथे ने सूर्य की अपार ऊर्जा के ा की व्याख्या करते हुए बताया है कि चार हाइड्रोजन क सीधे-सीधे क्रिया न करके चार तापनाभिकीय क्रियाओं द्वारा संलयित होते हैं तथा हीलियम नाभिक र्माण करते हैं और 26.7 MeV ऊर्जा मुक्त होती हैं ।

ासिक पहलू : सौर ऊर्जा का उपयोग मानव आदि काल ा करता आ रहा है । वर्षा, मौसम चक्र, कृषि से ले कर ं सुखाने तक मनुष्य के सभी कार्य इसी ऊर्जा से सम्पन्न हैं । साथ ही अपने विकास क्रम में उसने ऊर्जा प्राप्ति लए अब तक जितने भी परम्परागत साधनों का उपयोग ा है, वे भी मूलतः सूर्य की ही देन हैं ।

सूर्य किरणों को एक स्थान पर केंद्रित कर के बहुत ा तापमान पैदा करने व आग लगाने का तरीका भी मनुष्य ाफी पहले ढूंढ़ लिया था । कहते हैं कि आज से लगभग 00 वर्ष पहले यूनानी वैज्ञानिक आर्कमिडीज ने इस ान्त का प्रयोग शत्रुओं को मारने के लिए किया था । य प्यूनिक युद्ध के दौरान जब रोमन सेना का नौसेनिक साइरेक्यूज तट के निकट आ गया तो आर्कमिडीज ने ने हजारों सैनिकों को अपनी अत्यंत चमकदार ढालों से की किरणों को रोमन जलपोतों पर केंद्रित करके विजय ल की ।

आधुनिक युग में, सन् 1973 में आये पेट्रोलियम ट ने मनुष्य को पुनः ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की खोज अनुसंधान करने के लिए प्रेरित किया । सन् 1974 में क्त राष्ट्र संघ ने ऊर्जा के नये साधनों की खोज पर बल ा और इसी उद्देश्य से 1981 मे आयोजित एक र्राष्ट्रीय सम्मेलन में चुने गये ऊर्जा के 14 नए स्रोतों में ऊर्जा प्रमुख थी । वैसे पहला सौर मकान सन् 1938 में अमरीका में मैसाचूसेट्स इंन्स्टिट्यूट ऑफ टेकनोलॉजी के प्रोफेसर व्हाइट सी. होटेल ने बनाया था । उन्होंने ऐसे चार मकान बनाए थे जिनमें छत पर तांबे के समतल चादर वाले कलेक्टर पानी गरम करने के लिए लगाए गए थे । इस गरम पानी के कारण घर भी गरम रहता था ।

हमारे देश में भी सन् 1950 के आसपास से ही सौर ऊर्जा के उपयोग के प्रारम्भिक प्रयास आरम्भ हो गए थे । राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, केंद्रीय नमक और समुद्रीय रसायन अनुसंधान संस्थान, केंद्रीय भवन निर्माण अनुसंधान तथा केंद्रीय ऊसर क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जैसे संस्थानों में ऐसे उपकरण तैयार किए गए जिन में सूर्य ऊर्जा की सहायता से खाना पकाने, पानी गरम करने, स्थान गरम करने और फसल पकाने जैसे छुटपुट कार्य संपन्न हो सके । लेकिन इसका कोई व्यावहारिक परिणाम नहीं निकला और विश्व के विभिन्न भागों में तेल के कुओं से भारी परिमाण में पेट्रोलियम निकलने से यह सारा उत्साह दो-चार साल में ही ठंडा पड़ गया ।

इसके बाद जब सत्तर के दशक में एक बार फिर पेट्रोलियम पदार्थों का संकट आ खड़ा हुआ तो सन् 1973 में राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी समिति ने सौर ऊर्जा के सम्बंध में एक नीति निर्धारित की जिसके परिणाम स्वरूप हमारे देश में इस दिशा में आज उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं ।

धूप को ऊर्जा में कैसे बदला जाए ?- सूर्य से मिलने वाली धूप को ऊर्जा में परिवर्तित करने की दो विधियां विकसित की गई है । पहली विधि, जिसे "तापीय विधि" कहते हैं, में सूर्य की गर्मी से जल को गरम कर के भाप बनाई जाती है और उससे टरबाइन इंजन चला कर विद्युत का उत्पादन किया जाता है । दूसरी विधि में फोटो सेलों का उपयोग हो रहा है ।

प्रकाश (फोटो) वोल्टीय सेल :- सौर सेल या प्रकाश वोल्टीय सेल के निर्माण के लिए अतिशुध्द श्रेणी के सिलिकॉन क्रिस्टल से 0.012 इंच मोटाई का टुकडा काटकर, उससे एन-पी प्रकार का सिलिकॉन क्रिस्टल डायोड तैयार किया जाता है । इसके लिए इसकी दोनों सतहों पर एन और पी प्रकार के पदार्थ, अतिसूक्ष्म मात्रा में, अशुद्धियों के रूप में

प्रविष्ट कराए जाते हैं । "अशुद्धि डोपिंग" की इस प्रक्रिया में अत्याधिक सावधानी की आवश्यकता होती है ।

जब उन सौर-सेलों पर प्रकाश किरण आपतित होती है तो उसमें उपलब्ध फोटोनों के कारण प्रकाश विद्युत प्रभाव उत्पन्न होता है । सिलिकॉन चिप्स पर इन फोटोनों के गिरने से पी क्षेत्र से इलेक्ट्रॉन मुक्त होते हैं और सिलिकॉन डायोड संधि पर इलेक्ट्रॉन एक दिशा में तथा कोटर विपरीत दिशा में गति करते लगते हैं । इससे संधि के आरपार एक विभान्तर स्थापित हो जाता है और परिपथ में धारा प्रवाहित होने लगती है । ये चिप्स इतनी संवेदनशील होती है कि सूर्य के हल्के प्रकाश और यहां तक कि किसी लैम्प की रोशनी से ही उनके भीतर विद्युत प्रवाह होने लगता है ।

एक अच्छा सौर सेल प्रति वर्ग सेंटीमीटर अधिकतम 30 मिली ऐम्पियर धारा और 500 मिली वोल्ट का विभवांतर उत्पन्न कर सकता है तथा इससे लगभग 0.015 वाट ऊर्जा प्राप्त होती है । 2 X 2 वर्ग से. मी. आकार का एक सौर सेल लगभग 0.6 वाट ऊर्जा देता है । इससे अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए कई सौर सेलों को मिला कर सौर - पैनल बनाया जाता हैं । 14 वोल्ट पर एक वाट ऊर्जा देने वाले सौर पैनल का क्षेत्रफल लगभग 225 वर्ग सेंटीमीटर तथा द्रव्यमान लगभग एक किलोग्राम होता है ।

अधिक लागत - यद्यपि सौर - सेल का प्रमुख घटक सिलिकॉन पृथ्वी पर रेत के रूप में अथाह मात्रा में उपलब्ध है तथापि यह काफी महंगे पड़ते हैं । इसका कारण सिलिकॉन का भौतिक रूप में उपस्थित होना तथा चिप्स बनाने की जटिल प्रक्रिया है । इसलिए इन दिनों सम्पूर्ण विश्व में सौर सेलों का उत्पादन बढ़ाने तथा उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि करने के प्रयास चल रहे हैं ।

सामान्य सौर सेलों की प्रकाश को विद्युत ऊर्जा में बदलने की क्षमता लगभग 10% ही होती है । लेकिन अब संयुक्त राज्य अमरीका व जापान के वैज्ञानिकों ने ऐसे सौर - सेल निर्मित कर लिए हैं जिनकी क्षमता पहले से दोगुनी है । सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने तो यहां तक दावा किया है कि 30 प्रतिशत कार्यक्षमता के सौर सेल का निर्माण संभव है ।

सिलिकॉन के स्थान पर नये प्रकाश वोल्टीय पदार्थों की खोज की जा रही है । प्रयोगों के दौरान यह भी पाया गया है कि कांच और पौलीक्रिस्टलीय सिलिकॉन के जंव वाले सौर सेलों की दक्षता एकल क्रिस्टल सिलिकॉन सेल से 7 प्रतिशत अधिक होती है ।

सौर सेलों और सौर संकेन्द्रक दर्पणों या लैंसों परस्पर जोड़ने के भी प्रयोग किए जा रहे हैं । इससे सौर से पर विकिरणों का अधिक संकेन्द्रण होगा तथा सौर सेलों कार्यक्षमता में बढ़ोत्तरी संभव हो सकेगी । वैसे पिछले सालों से निरन्तर हो रहे अनुसंधान से विद्युत उत्पादन दोनों ही विधियों की लागत में भारी कमी आई है । प जहां सौर ऊर्जा से प्राप्त एक वाट की कीमत 3000 रु आती थी वहां अब 150 रुपए से भी कम की लागत अ है । लेकिन अभी हमें इस तकनीक में और विस्तार क होगा तथा इसे सरल, सहज और सस्ता बनाना होगा ।

सौर ऊर्जा के अनुप्रयोग - हालांकि सौर ऊर्जा से वि उत्पादन की प्रक्रिया अपनी शैशवावस्था में ही है, फिर जीवन के कई क्षेत्रों में उसका उपयोग घड़ल्ले से हो रहा है यहां हम कुछ विशेष क्षेत्रों में सौर ऊर्जा के महत्वपूर्ण योगद की चर्चा सिलसिलेवार कर रहे हैं :

i) सौर बिजलीघर - फोटो सेल पर आधारित कम क्षम वाले सौर बिजलीघरों का प्रचलन अब आम हो गया है । प्रौद्योगिकी प्रयोगात्मक रूप से लगभग 15 वर्ष पू विकसित हुई थी और तब से निरन्तर अनुसंधान की सहाय से अधिक से अधिक क्षमता वाले सौर बिजलीघरों को व लागत पर विकसित करने के प्रयास चल रहे हैं ।

इटली के सिसली प्रांत में जहां धूप ज्यादा घंटे त रहती है, एंड्रेनो नामक नगर में "यूरिलियोज" सौर ऊ बिजलीघर काफी समय से बिजली बना रहा है । सन् 198 में स्थापित यह पहला सौर बिजलीघर यूरोपीय समुदाय देशों ने मिलकर बनाया है । एक मैगावाट क्षमता वाले इ बिजलीघर में 128 सौर दर्पणों की सहायता से सूर्य व रौशनी को एक बॉयलर पर केंद्रित कर पानी को भाप बदलकर विद्युत टरबाइन को चलाती है ।

भारत में इस तकनीक पर विविध स्थानों पर सौ गांवों की स्थापना की गई है जहां की सारी विद्यु आवश्यकता इसी सौर विद्युत से पूरी होती है । लद्दाख

गांव चौगलमसर को देश का सबसे पहला तथा विश्व का ा सौर गांव होने का श्रेय हासिल है ।

जापान, अमरीका, जर्मनी जैसे देशों में जहां सौर ि की तकनीक भारत की अपेक्षा अधिक विकसित है,30 00 मेगावाट क्षमता के सौर बिजलीघर विकसित किए चुके हैं । अमरीका में पैराबोलीय - संग्रहण की विधि कैलिफोर्निया में 150 मेगावाट क्षमता का एक प्लांट ं कर रहा है ।

पानी गरम करने में सौर ऊर्जा का उपयोग - सौर ऊर्जा का से आसान उपयोग है - पानी गरम करना । वैसे तो य आदिकाल से ही सूर्य की गरमी से पानी गरम करता ा है, लेकिन पिछले कुछ सालों में इस कार्य के लिए निकों ने कई छोटे बड़े यंत्र बनाए हैं । इन यंत्रों में काले की अवशोषक पदार्थों की चपटी प्लेटों की सूर्य रश्मियों ारम किया जाता है । साइफन प्रणाली पर आधारित यां इस ताप को ग्रहण करती है तथा पानी को गरम करके रक टेंक में भेज देती है । बड़े टेंकों में जहां साइफन ली काम नहीं करती, वहां विद्युत चालित पंप लगाए जाते घरेलू क्षेत्रों में नहाने, कपड़े धोने, पीने व खाना पकाने के 100 लीटर से लेकर अस्पतालों, होटलों, छात्रावासों दे के लिए एक लाख लीटर तक की क्षमता वाले जल क यंत्र निर्मित किए गए हैं । इन यंत्रों में पानी को ला भी जा सकता है ।

केन्द्रीय मरू अनुसंधान शाला, जोधपुर द्वारा -तरह के सौर वाटर हीटर भिन्न - भिन्न उपयोंगों के लिए र किए गए हैं । लगभग 400 से 800 रुपए की लागत । इन उपकरणों को कोई भी लुहार अपने गांव में बना ता है तथा इसमें सर्दियों की शाम में भी लगभग 100 र पानी को 45 - 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक गरम किया जा ता है । काजरी के वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित एक ण्डरनुमा सौर वाटर हीटर चपटी प्लेट वाले हीटरों की क्षा काफी अच्छा काम करता है । काजरी द्वारा निर्मित अन्य हीटर चार दिन तक बिना धूप के गरम पानी नब्ध करा सकता है । आवश्यकतानुसार गरम और रा हुआ जल उपलब्ध करवाने के लिए काजरी के निकों ने एक संयुक्त सौर ऊर्जा जल हीटर एवं सौर ऊर्जा स्थिरक यंत्र बनाया है । ट्रैक्टर, जीप इत्यादि की बैटरियों, प्रयोगशालाओं, चिकित्सालयों आदि में निथरा हुआ जल उपलब्ध करवाने के लिये यह संयत्र बहुत उपयोगी है ।

चीन में एक ऐसा तरण ताल बनाया गया है जिसका पानी सौर ऊर्जा द्वारा गरम होता है । 12.5 मीटर लंबे तथा 8.5 मीटर चौड़े इस तरणताल में पूरे साल भर तैराकी के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध रहता है ।

iii) सौर पादप गृह व सौर कुटीर - ऊँचे पहाड़ी स्थानों पर वहां के ठंडे तापमान के कारण वहां साग - सब्जियां तथा फल नहीं उग पाते हैं । लेकिन सौर संग्राहकों की सहायता से ऐसे पादप गृहों का निर्माण संभव हो सका है जिसमें पेड - पौधों को उचित वातावरण दिया जा सकता है । इन पादप गृहों को अवरोधक पदार्थों की दीवार से बनाया जाता है ताकि एकत्र गर्मी बाहर न जा सके । इस पद्धति के उपयोग से पादप गृहों के अंदर व बाहर के तापमान में 20 से 25 डिग्री सेंटीग्रेड तक का अंतर रहता है । इन घरों में मुर्गी, खरगोश इत्यादि पशु - पक्षियों का पालन भी हो सकता है, जो कि सामान्यतः इन परिस्थितियों में जीवित नहीं रहते हैं ।

iv) प्रशीतन - सूर्य की गरमी का उपयोग केवल किसी वस्तु को गरम करने के लिए ही नहीं होता है, बल्कि प्रशीतन व वातानुकूलन का कार्य भी इससे बखूबी किया जा सकता है । भारत में ही विकसित नई सौर - तापीय प्रौद्योगिकियों द्वारा प्रतिदिन 5000 लीटर दूध को ठंडा करने के तीन संयत्र अब तक लग चुके हैं । अनाज को सुरक्षित रखने के लिए भी इन शीतगृहों का उपयोग किया जा सकता है । जीवन रक्षक औषधियों के संरक्षण हेतु सौर आइस पैक फ्रीजर भी बनाए जा चुके हैं तथा कई औद्योगिक कार्यों में भी इन प्रशीतन यंत्रों का उपयोग हो रहा है । पडरौना स्थित शीत गृह में 200 टन फल व सब्जियां संरक्षित की जा सकती है ।

v) सौर ऊष्मा पंप - कृषि में सिंचाई की सुविधा के लिए सौर ऊर्जा पर चलने वाले पंप भी विकसित हो चुके हैं जो प्रतिदिन 30 से 40 हजार लीटर पानी सींच लेते हैं । इस पम्प में लगे सौर सेल सूर्य की किरणों को सीधे ही विद्युत में परिवर्तित कर देते हैं । विदेशों में इस प्रकार के पंपों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है । भारत में भी भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, हैदराबाद की अनुसंधान और विकास इकाई के वैज्ञानिकों ने

एक सौर ऊष्मा पंप विकसित किया है जो गहरे कुओं से सीधे पानी खींचने में सक्षम है । सामान्य धूप वाले दिनों में यह पंप 50 मीटर तक गहरे कुओं से लगभग 50,000 लीटर तक पानी निकाल सकता है तथा इस पंप को प्रतिदिन औसतन आठ घंटे तक चलाया जा सकता है ।

vi) सौर चूल्हे - एक परिवार के लिए औसतन 700 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रतिदिन सिर्फ खाना पकाने के लिए चाहिए होती है, जिसे अब कुछ हद तक सौर चूल्हों का उपयोग करके पूरा किया जा सकता है । देश के विभिन्न शोध केंद्रों, शिक्षण संस्थाओं और स्वतंत्र आविष्कारकों द्वारा अब तक सौर चूल्हों की अनेक किस्में विकसित की जा चुकी हैं । समतल तथा परावलीय दर्पणों की सहायता से सूर्य का गर्मी को खाना बनाने वाले डिब्बों पर परावर्तित किया जाता है । इनमें चूंकि खाना धीरे - धीरे पकता है, अतः भोजन की पूरी पौष्टिकता बनी रहती है और खाना स्वादिष्ट बनता है ।

vii) घरों में विद्युत उत्पादन - आज ऐसे अनेक भवन और दफ्तर देखने को मिल जाएगें जिनमे सौर ऊर्जा का प्रयोग हो रहा है । जर्मनी में लगभग 30,000 छतें "सौर टाइल्स" से आच्छादित हैं जो सूर्य किरणों को अपनी सतह पर सोखती हैं और उसे ऊष्मा एवम् विद्युत में बदल देती हैं ।

viii) वस्त्र उद्योग में सौर ऊर्जा - वस्त्र उद्योग संभवतः भारत का ऐसा पहला उद्योग है जिसमें पानी व हवा गरम करने तथा भाप बनाने में सौर ऊर्जा का उपयोग हो रहा है ।

ix) दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं में सौर ऊर्जा - निरन्तर अनुसंधान के जरिए विश्व में सौर ऊर्जा के सदुपयोग के नए - नए रास्ते ढूंढ़े जा रहे हैं । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सुप्रसिद्ध घड़ी निर्माता जुंगहंस कंपनी ने रेडियो कंट्रोल सोलर घड़ी बनाई है । सूक्ष्मता की दृष्टि यह घड़ी एक सेकण्ड का दस लाखवां समय भी बता सकती है ।

पश्चिमी जर्मनी के जरजन ब्रेमर ने एक ऐसी युक्ति का निर्माण किया है जो साइकिल के पैडलों को तेज गति से चलाने के लिए सौर ऊर्जा के द्वारा शक्ति प्रदान करती है और साइकिल की गति 45 कि. मी. प्रति घंटे तक हो जाती है । इसके लिए साइकिल के कैरियर पर सौर ऊर्जा को विद्युत में बदलने के लिए विशेष प्रकार के सोलर मोड्यूल लगाए गए हैं । सूर्यास्त के बाद साइकिल में लगी हुई बैटरी, सौर ऊर्जा के विकल्प के रूप में तीन घंटे तक साइकिल को बिना र मारे चला सकती है । इससे पहले जर्मनी में ही सौर ऊ चलने वाली तीन पहियों की साइकिल का निर्माण किया था जो 20 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलती है ।

क्वीन्सलैण्ड विश्वविद्यालय (आस्ट्रेलिया) के ऊर्जा के वैज्ञानिक डॉ. डगुर ओटोवीसी ने आगेपीछे च वाली चार सीटों की ऐसी साइकिल का आविष्कार किर जो सौर ऊर्जा तथा पैडल, दोनों ही तरीकों से चल सकती चीन और रूस के वैज्ञानिकों ने कार को सौर ऊर्जा से च का प्रयास किया है । चीन के वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित का वजन 159 किलोग्राम है तथा फाइबर ग्लास अल्यूमीनियम से बनी यह कार अपने तीन पहियों पर 1 किलोमीटर तक 20 किलोमीटर प्रतिघंटा की रफ्तार से सकती है । रूस और बुल्गारिया के सहयोग से बनी ऊर्जा कार भी 20-25 किलोमीटर प्रतिघंटे की रफ्तार चलती है तथा इसका वजन है 250 किलोग्राम । सौर ऊ को विद्युत में बदलने के लिए कार के बोनट पर दो सो बैटरियां लगाई गई हैं ।

सोलर बैटरियों के उपयोग से आम उपयोग के इलेक्ट्रानिक उपकरण जैसे रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेप रिका केलकुलेटर इत्यादि चलाये जा रहे है । इसके अति रेफ्रीजरेटर, एयर कंडीशनर, कूलर, टीवी इत्यादि युक्तियों भी सौर ऊर्जा से चलाया जा सकता है ।

सौर ऊर्जा के क्षेत्र में हो रही त्वरित प्रगति को देख हुए संभव है कि अगली सदी में विमान भी सौर ऊर्जा उड़ने लगें । अमरीका की लॉकहीड नामक कंपनी भी ऐसा वायुमान विकसित कर रही है जो सौर ऊर्जा से च सके । यह विमान मानवहीन होगा तथा 20 किलोमीटर ऊंचाई पर पृथ्वी पर उतरे बिना एक वर्ष तक आकाश में सकेगा । इस जहाज का उपयोग आंकड़ों को एकत्रित क सूचना देने और कृषि सम्बंधी जानकारी देने में किया सकेगा । प्रयोगात्मक रूप से आज से लगभग एक दश पूर्व "पेग्विन" नामक एक विमान ने 12 फुट की ऊंचाई 15 मील प्रतिघंटा की रफ्तार से दो मील तक अर्थात् 8 मि की उड़ान भरी थी ।

अंतरिक्ष में विद्युत - पृथ्वी पर सौर ऊर्जा को अपना पूर्ण कास करने में कुछ समय लगेगा, लेकिन वैज्ञानिकों की ाहें अभी से अंतरिक्ष में सौर ऊर्जा से विद्युत बनाने की ा में उठ गई है । इसके पीछे सबसे बड़ा कारण अंतरिक्ष हर समय तेज धूप का उपलब्ध रहना है । वैज्ञानिकों का ना है कि अंतरिक्ष में लगभग 7 गुना अधिक बिजली ती है । अंतरिक्ष में विद्युत उत्पादन के बाद सबसे बड़ी स्या उसे पृथ्वी पर लाने की होगी । वैज्ञानिकों की राय है इसे माइक्रोवेव के रूप में धरती पर भेजा जाएगा, जहां 50-60 कंपन प्रति सेकंड वाली प्रत्यावर्ती धारा में बदला सकेगा ।

अंतरिक्ष में विद्युत उत्पादन की यह योजना सर्वप्रथम 1968 में डॉ. पीटर ग्लेजर के मस्तिष्क में आई थी, केन बहुत महंगी होने के कारण अभी तक इसका यान्वयन नहीं हो सका है । पांच हजार मेगा वाट बिजली ादित करने वाले लगभग 500 टन भार के एक अंतरिक्ष ुत केंद्र की अनुमानित लागत लगभग 2,200 करोड़ र आती है तथा दस हजार मेगावाट क्षमता के अंतरिक्ष विद्युत केंद्र के लिए यह लागत हो जाती है - 3400 करोड़ डालर ।

उल्लेखनीय है कि हमारी पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगा रहे मानव निर्मित अनेकानेक उपग्रहों की बिजली की आवश्यकता सौर बैटरियों के माध्यम से ही पूरी की जाती है ।

हालांकि सौर ऊर्जा की प्रारम्भिक लागत काफी अधिक आती है, लेकिन दीर्घकालीन लागत की दृष्टि से सौर ऊर्जा अन्य स्रोतों की अपेक्षा काफी सस्ती एवं प्रदषूण विहीन है । सौर - विद्युत का प्रयोग कर के तारें बिछवाने इत्यादि के भारी व्यय से बचा जा सकता है । अब तक जितना भी निवेश इस क्षेत्र में हुआ है, उससे अधिक मूल्य की लकड़ी, पेट्रोलियम आदि पारम्परिक ईंधन बचाया जा चुका है । और फिर इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि पारम्परिक ईंधन भण्डारों के चुक जाने के बाद ऊर्जा संकट के समय केवल मात्र एक यही सहारा मानव के पास बचेगा भले यह कितना भी महंगा क्यों न हो । अतः संगठित प्रयास चलते रहने चाहिए । * * *

(पृष्ठ 9 से आगे)

ोडन में चार तथा दुनिया के शेष भागों में बारह ऐसे मरीज जनमें ऐसी कोशिकाओं का निरोपण (ग्राफ्टिंग) किया गया जो अपनी ऐड्रिनल (अधिवृक्क) ग्रन्थियों से थोड़ा-बहुत ामीन का स्राव करती हैं । यूं पतित गर्भ के मस्तिष्क की शिकाओं के निरोपण को लेकर स्वीडन में नैतिकता संबंधी ाद उठ खड़े हुए थे । अतः अब ऐसे "निरोपण" के लिए एक आचार संहिता बनाई गई है जिसके तहत शल्य केत्सकों को निश्चित कसौटियों के अन्तर्गत पतित गर्भ के ताष्क के ऊतकों को प्रत्यारोपित करने की अनुमति दी ी है । प्रत्येक मामले पर एक "आचार नीति समिति" ार करती है । लिन्डवाल एवं उनके सहयोगियों ने चूहों मस्तिष्क में साइक्लोस्पॉरिन रसायन का प्रयोग कर मानव शिकाएं निरोपित की हैं । साइक्लोस्पॉरिन प्रतिरक्षा तंत्र संदमित करके इन कोशिकाओं को अस्वीकार करने से ता है । उनकी खुशी का यह देखकर ठिकाना न रहा कि उनके द्वारा निरोपित कोशिकाएं केवल जीवित ही नहीं रहीं अपितु उन्होंने वर्धिक होकर नष्ट हुई कोशिकाओं से हुई क्षति की भी पूर्ति कर दी । इन परिणामों की सफलता से उत्साहित होकर अब ये वैज्ञानिक मानव कोशिकाओं को पारकिन्सन रोगियों में निरोपित करने संबंधी योजना पर विचार कर रहे हैं ।

वैसे यह भी सच है कि पारकिन्सन रोगियों को इन अनुसंधानों से निकट भविष्य में शायद ही पूर्ण लाभ मिल पाए किन्तु यह संभावना दिन प्रतिदिन बलवती होती जा रही है कि आने वाले समय में अवश्य ही ऐसे पर्यावरणीय घटक या घटकों का पता लग जाएगा जो इस बीमारी को जन्म देते हैं । उस स्थिति में इस बीमारी का उपचार करने के सही तरीकों को आसानी से खोजा जा सकेगा । फलस्वरूप, तब इस रहस्यमय बीमारी को इसके प्रारम्भिक चरणों में ही रोका जा सकेगा । न जाने वह दिन अभी वैज्ञानिकों की पहुंच से कितनी दूर है ? * * *

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

विरल एवं उच्चतापसह धातु : एक अवलोकन

अशोक कुमार सूरी, (वैज्ञानिक अधिकारी
धात्वकीय प्रभ
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंम्बई 400 0

'रेअर अर्थ' यानी विरल मृदा धातु शब्द का प्रयोग आरंभ में उन धातुओं के लिये किया जाता था जो भू पटल में अल्प रुप से वितरित होने के कारण आसानी से उपलब्ध नही थे । परंतु आज यह बात टाइटेनियम, जिरकोनियम, वेनेडियम इत्यादि धातुओं के लिए सही नही लगती । बहरहाल द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से उच्च प्रौद्योगिकी में इन धातुओं का उपयोग काफी बढ़ा है । प्रस्तुत लेख में इन महत्वपूर्ण विरल एवं उच्चताप सह धातुओं के उपयोग, संसाधन, पृथक्कीकरण इत्यादि पहलुलों पर समुचित जानकारी दी गयी है ।

विरल धातु शब्द का प्रारंभिक प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी में उन धातुओं के लिये किया गया था जो भूपटल में अल्प रुपसे वितरित होने के कारण आसानी से उपलब्ध नही थे । इन धातुओं की प्रोद्यौगिक उपयोगिता लगभग नहीं के बराबर थी और प्राकृतिक स्त्रोतों से निष्कर्षण एक बहुत कठिन कार्य था । इस प्रकार , प्राकृतिक रूप से उपलब्ध धातुओं में से आधे से अधिक धातु विरल धातु कहलाने लगे । अब यह बात अच्छी तरह से प्रमाणित हो चुकी है कि विरल धातु कहलाने वाले यह धातु जैसे कि टाइटेनियम, जिरकोनियम, वेनेडियम आदि वास्तव में उतने विरल नही हैं और इस वर्ग में आने वाले बहुत से धातुओं की प्रचुरता, आमतौर पर ज्ञात एवं उपयोग में आने वाले अन्य नई धातुओं जैसे कि सीसा, कलई, पारा, सोना, चाँदी आदि से कही अधिक है (चित्र-1), अतः पूर्ण रूप से सही नहीं होने के बावजूद भी इन धातुओं के साथ विरल या असामान्य विशेषण का प्रयोग अभी भी बना हुआ है । तालिका-1 में विरल धातुओं को उनके गुणों एवं उपयोगिता में समरुपता के आधार पर पाँच उपविभागों में बांटा गया है । विरल धातुओं के उपयोग सामान्यतः नये हैं और मुख्य रुप से द्वितीय युद्ध के बाद अन्वेषित हुए हैं । वस्तुतः उच्च प्रौद्योगिकी के सीमित क्षेत्रों जैसे कि नाभिकीय, इलेक्ट्रानिकी, एयरोस्पेस आदि में विशिष्ट गुण सम्पन्न धातुओं की उपयोगिता एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है । विरल धातुओं की इन क्षेत्रों में उपयोगिता से एक ओर तो इन धातुओं के निष्कर्षण, उपयोग एवं

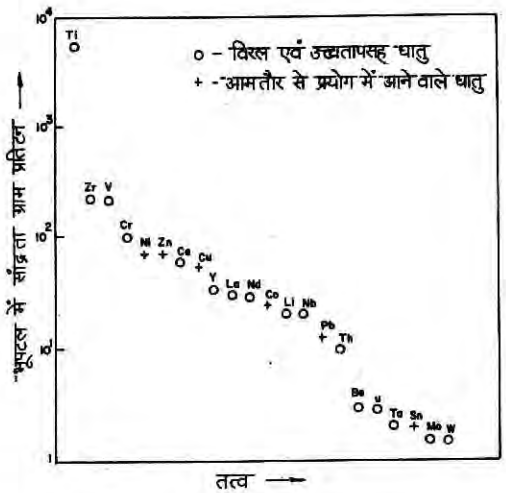

चित्र - 1 भूपटल में कुछ विरल एवं आमतौर से प्रयुक्त होने वाले धातुओं की सांद्रता ।

उत्पादन में वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर उपर्युक्त क्षेत्रों के विकास में भी मदद मिली है ।

योगिता

हल्के विरल धातु, विशेषकर लीथियम और लियम के उपयुक्त गुणों के कारण उनका प्रयोग नाभिकीय अन्तरिक्ष क्षेत्रों में अपरिहार्य हो गया है । बेरिलियम की कृष्ट न्यूट्रान पारदर्शिता एवं न्यूट्रान प्रकीर्णन क्षमता के ण इसका प्रयोग नाभिकीय रिएक्टर के क्रोड़ व न्यूट्रान तों के निर्माण में किया जाता है । इस की अत्याधिक ता एवं निम्न घनत्व के कारण इसका उपयोग अंतरिक्ष ों एवं अंतरिक्ष यानों में किया जाता है । ट्रिशियम प्रजनन विशिष्ट क्षमता एवं उत्कृष्ट ताप परिवहन गुणधर्म के ण लीथियम भविष्य में उपयोग में आनेवाला एक त्वपूर्ण धातु होगा । संलयन रिएक्टर में यह एक ावित शीतलक के रुप में प्रयोग किया जा सकता है । उग्र ायनिक क्रियाशीलता के कारण लीथियम का प्रयोग कई अन्य विरल धातुओं के उत्पादन में इन उत्कृष्ट अपचयक के रूप में हो सकता है । उच्चतापसह विरल धातु शब्द का प्रयोग उन विरल धातुओं के लिए किया जाता है जिनका गलनांक क्रोमियम के गलनांक से अधिक होता है और अपेक्षित दृढता निकल एवं कोबाल्ट के परामिश्र धातु के प्रयोग के तापक्रम पर परामिश्र धातुओं से काफी अधिक होती है । इसके अतिरिक्त कुछ उच्चतापसह धातुओं की संक्षारण प्रतिरोध क्षमता विभिन्न रासायनिक वातावरण एवं सेवा अवस्थाओं में अत्यन्त उत्कृष्ट है जैसे कि टेन्टेलम, नायोबियम, जिरकोनियम, टाइटेनियम, हाफनियम धातु कई प्रकार के रासायनिक वातावरणों में प्रयोग में लाये जाते है । उच्चन्यूट्रान पारदर्शिता, विकिरण स्थिरता और संक्षारण प्रतिरोध क्षमता के कारण जिरकोनियम एवं नायोबियम का उपयोग नाभिकीय रिएक्टर के अन्दर संरचनात्मक पदार्थों के

तालिका - 1 :- विरल धातुओं का वर्गीकरण एवं उनकी उपयोगिता

वर्ग	धातु	गुणधर्म	उपयोगिता
हल्के विरल धातु	लीथियम, रुबिडियम सिज़ीयम, बेरिलियम	निम्नघनत्व, अति प्रतिक्रियाशील	नाभिकीय, एवं अन्तरिक्ष
उच्चतापसह	टाइटेनियम, जिरकोनियम हाफनियम, वेनेडियम, नायोबियम, टेन्टेलम, क्रोमियम, मोलिब्डेनम टंगस्टन, रिहनियम	उच्च गलनांक, उच्चतापदृढ़ता, संक्षारण प्रतिरोध क्षमता, विलक्षण नाभिकीय गुणधर्म	नाभिकीय, अन्तरिक्ष, इलेक्टानिकी, धातुकी, एवं रासायनिक औद्योगिकी
परिक्षेपित विरल धातु	गैलियम, इन्डियम थैलियम, जरमेनियम सैलीनियम, टेल्यूरियम	विलक्षण इलेक्टानिकी गुणधर्म	इलेक्ट्रानिकी
विरलमृदा धातु	स्केन्डियम, इटरियम, लेन्थेनम ... (चौदह धातु)	विलक्षण प्रकाशीय, चुंबकीय एवं नाभिकीय गुणधर्म	धातुकी, रासायनिक, प्रकाशीय सिरेमिक एवं नाभिकीय
रेडियोधर्मी विरल धातु	रेडियम, थोरियम, प्रोटेक्टिनियम, यूरेनियम, प्लूटोनियम, पोलोनियम	नाभिकीय गुणधर्म	नाभिकीय ऊर्जा सर्जन

रूप में होता है । मोलिब्डेनम एवं टगंस्टन अपने उच्च गलनांक के कारण विद्युत लैम्प उद्योग के आधारस्तम्भ होने के साथ उच्च तापक्रम पर उपयोग में लाये जानें वाले उत्कृष्ट पदार्थ हैं । टेन्टेलम, मोलिब्लेडम, टंगस्टन धातुओं का उपयोग विद्युत एवं इलेक्ट्रानिकी उद्योगों में भी काफी मात्रा मे होता है । टंगस्टन तो हाईस्पीड स्टील और कार्बाइड औजारों में भी काफी मात्रा में प्रयोग में लाया जाता है । अन्य उपयोगों के अलावा नायोबियम, वेनेडियम एवं मोलिब्लेडम धातुओं का अत्याधिक उपयोग (लगभग 80 प्रतिशत से भी अधिक) इस्पात के उत्पादन में होता है, इन धातुओं के मिश्रण से इस्पात के गुणधर्म अत्याधिक प्रभावित होते हैं । विरल मृदा धातु के मुख्य रुप से धातुकर्म, रसा व उत्प्रेरक सिरेमिक व काँच, इलेक्ट्रानिकी व स्फुरदीपी चुंबकीय पदार्थों आदि में प्रयोग किये जाते हैं । यद्यपि धातुओं के गुण सरंचनात्मक पदार्थों के रूप में उपयोग योग्य नही हैं, परन्तु उपर्युक्त क्षेत्रों में उनके उपयोग सफल पूर्वक किये जाते हैं । इन के यौगिक अत्याधिक स्थाई होते एवं कई विलक्षण प्रकाशीय, नाभिकीय, चुंबकीय ग प्रदर्शित करते हैं । इन गुणों के कारण, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र विरल मृदा पर शोधकार्य दिन प्रतिदिन बढ रहे हैं रेडियोधर्मी विरल धातुओं ने तो आधुनिक प्रौद्योगिकी क्षेत्र में एक हलचल सी ला दी है । रेडियोधर्मी थोरि

तालिका - 2 : उच्चतापसह विरल एवं विरलमृदा धातुओं के भारतीय संसाधन

धातु	खनिज	यौगिक	स्थान जहाँ पर पाये जाते है
टाइटेनियम	इल्मेनाइट	$FeO.TiO_2$	दक्षिणी एवं पूर्वी समुद्री किनारों प
	रुटाइल	TiO_2	(केरल, तामिलनाडू, उड़ीसा)
जिरकोनियम-हॉफनियम	जिरकॉन	$Zr(Hf)SiO_4$	"
विरलमृदा धातु	मोनाज़ाइट	$(Ce, Y, Ca, Th)\ PO_4$	"
नायोबियम एवं टेन्टेलम	कोलम्बाइट, टेन्टेलाइट	(Fe, Mn) (Ta, Nb)O4	हजारीबाग (बिहार)
	पाइरोक्लोर	(Ca, Ba, Na) (Nb, Ta) (O, OH F)	तामिलनाडू, आन्ध्र प्रदेश
	कैसेटराइट	$Sn\ O_2$ (Nb, Ta) (Fe Mn) O4	मध्यप्रदेश, उड़ीसा
वेनेडियम	टाइटेनिफेरस, मैग्नेटाइट	Fe_3O_4 (V, Ti)	बिहार, कर्नाटक
	बाक्साइट	$Al_2O_3\ x\ H_2O$(V)	उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा
मोलिब्डेनम	मोलिब्डेनाइट	MoS_2	जादुगुडा (बिहार), घाटशिला (बिहार)
टंगस्टन	वुलफ्रेमाइट	(Fe, Mn) WO_4	देगना (राज.), बर्गुबुन्डा (आ.प्र.) कुही-कोबना (महा.), अल्मोड़ा,
	भिलाइट	Ca WO_4	कोलार, (कर्ना.) अल्मोड़ा (उ.प्र.)

नका - 3 : भौतिक सज्जीकरण की विभिन्न प्रक्रियाएँ

गुणधर्म	प्रक्रिया
बाह्य रुप	हाथ से छटाई
	रेडियोधर्मी अलगाव
आकार	चालना, साइक्लोन अलगाव
आपेक्षित घनत्व	फटकारना, जिगिंग, टेबलिंग,
	भारी माध्यम अलगाव
	बार्टले - भोजले एवं
	क्रास बेल्ट अलगाव
बाहरी सतह	फ्राथ फ्लोटेशन
चुंबकीय	निम्न एवं उच्च प्रबलता
	द्वारा अलगाव
विद्युतीय	विद्युतीय अलगाव

ायम एवं उसके अधिकाशं समस्थानिकों में नाभिकीय न्तर द्वारा विखंडनीय समस्थानिकों में परिवर्तित होने की क्षण क्षमता है । रेडियोधर्मी प्लूटोनियम, स्वविखंडनीय है । इन धातुओं का उपयोग नाभिकीय रिएक्टरों में के रूप में किया जाता है । इससे पूरे विश्व में गीगावाट (10^{12} वाट) विद्युत ऊर्जा का सर्जन किया है ।

धन :

विरल धातुओं के खनिज प्रायः कृश, संविरचना में ल एवं परिपेक्षित होते हैं । भारत में पाये जाने वाले कुछ न धातुओं के संसाधनों का ब्यौरा तालिका -2 में दिया है । तालिका से यह स्पष्ट है कि कुछ धातुओं के प्रचुर र हैं जैसे टाईटेनियम, जिरकोनियम, हॉफनियम, विरल धातु,वेनेडियम, क्रोमियम आदि । कुछ अन्य धातुओं के धन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं जैसे कि बेरिलियम, बियम, टेन्टेलम आदि । बाकी विरल धातुओं के धन सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं । भारत की दक्षिणी एवं समुद्री किनारों पर मिलने वाले टाईटेनियम, कोनियम, हॉफनियम एवं विरल मृदा के खनिज विश्व भर बसे बडे भंडारों में गिने जाते हैं । इन ससांधनों के हन द्वारा विरल मृदा के मध्यवर्तीय यौगिकों की रिक एवं निर्यात की आवश्यकताएं पूरी की जा रही हैं ।

भारत में वेनेडियम के विशाल भंडार मौजूद हैं । वेनेडियम साधारणतया एक गौण सहायक खनिज के रूप में टाईटेनिफेरस मैग्नेटाइट और बाक्साइट में मिलता हैं । टाईटेनिफेरस -वेनेडिफेरस मैग्नेटाइट के मुख्य स्रोत बिहार व कर्नाटक में हैं । कर्नाटक के मसानीकेरे क्षेत्र में पाये जाने वाले खनिज का संदोहन विश्वेरैया लौह व इस्पात कारखाने में किया जा रहा है । इस प्रक्रिया में टाइटेनिफेरस- वेनेडिफेरस मैग्नेटाइट खनिज का आंशिक अपचयन घूर्णन भट्टी में किया जाता है, तत्पश्चात् इसको विद्युतीय भट्टियोंमें पूर्ण रुप से धातु में अपचयित किया जाता है । इसके बाद पिघले धातु मिश्रण से वेनेडियम को वायुधमन द्वारा धातुमल (स्लैग) में स्थानांतरित कर दिया जाता है । इस धातुमल का उपयोग वेनेडियम धातु, उसके यौगिको की प्राप्ति अथवा निम्न कोटि के फैरो वेनेडियम के उत्पादन में किया जाता है । भारतीय बॉक्साइट में 0.05 से 0.1 प्रतिशत तक वेनेडियम पाया जाता है । बॉक्सइट के शुध्दीकरण प्रक्रिया में तापमान व सांद्रता नियंत्रण द्वारा वेनेडियम को वेनेडियम स्लज के रूप में अलग कर लिया जाता है । भारतीय अल्युमिनियम संयंत्रों से लगभग 100 टन प्रति वर्ष तक वेनेडियम धातु प्राप्त की जा सकती है । क्रोमियम यद्यपि उच्चतापसह धातुओं की सूची में आता है, इसका उपयोग परंपरागत उद्योगों में अधिक मात्रा में होता है । अतः इसका उत्पादन भी बृहत् स्तर पर होता है । क्रोमियम के खनिज क्रोमाइट के विशाल भंडार बिहार-उडीसा की पट्टी में स्थित हैं । कोलम्बाइट - टेन्टेलाइट (नायोबियम एवं टेन्टेलम के खनिज) बिहार के हजारीबाग जिले की अभ्रक की खानों मे पाया जाता है । नायोबियम का दूसरा खनिज पायरोक्लोर देश के विभिन्न भागों जैसेकि तामिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान एवं गुजरात में पाया जाता है । इनके अतिरिक्त नायोबियम एवं टेन्टेलम टिन (कलई) धातु के खनिज कैसेटराइट में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। टिन धातु (कलई) की उत्पादन प्रक्रिया में, नायोबियम व टेन्टेलम को अलग कर के प्राप्त किया जा सकता है । बेरिलियम के खनिज (अधिकतर बेरिल) अभ्रक की खानों में राजस्थान, बिहार एवं आंध्रप्रदेश में मिलते हैं । और इनका अभ्रक के साथ साथ सह उत्पादन होता है । अन्य उच्चताप सह धातु मोलिब्डेनम व टंगस्टन के खनिज

भारत में पाये जाते हैं । लेकिन इनमें धातु खनिज की सांद्रता बहुत कम है तथा भंडार भी अत्यंन्त सीमित हैं । मोलिब्डेनम बिहार में पाये जाने वाले यूरेनियम एवं तांबे के खनिजों में मिलता है जिसको सज्जीकरण द्वारा एक निम्न कोटि के खनिज सांद्र के रूप में प्राप्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त कुछ छोटे भंडार तमिलनाडु में भी मिलते हैं । इस प्रकार टंगस्टन के खनिज वुल्फ्रेमाइट के निम्न कोटि के भंडार राजस्थान के टेगना, महाराष्ट्र के कूही-कोबना, उत्तरप्रदेश के अल्मोडा, आंध्रप्रदेश के बर्गुबुन्डा एंव पश्चिमी बंगाल के बांकुरा में पाये जाते हैं । टगंस्टन का अन्य खनिज सिलाईट कर्नाटक के स्वर्ण भंडारो के साहचर्य में पाया जाता है ।

प्रौद्योगिकी :

प्राकृतिक रूप में मिलने वाले खनिजों से विरल धातुओं का निष्कर्षण एक जटिल कार्य है । इस हेतु अपनाई जाने वाली विधियाँ सामान्य धातुओं के लिए अपनाई जाने वाली विधियों से भिन्न हैं, यह भिन्नता निम्न कारणों से है :

क) प्राकृतिक रुप से उपलब्ध खनिज में खनिज की सांद्रता कम होती है और यह खनिज संविरचना में कम एवं जटिल होते हैं । अतः धातु प्राप्ति के लिए बहुत अधिक मात्रा में खनिजों को संसाधित करना पड़ता है ।

ख) प्राकृतिक रुप से मिलने वाले खनिज अतिस्थाई होते हैं । अतः अपचयन के समय खनिजों में उपस्थित लगभग सभी धातु यौगिक सहअपयन (Co-reduction) के कारण अशुद्ध धातु बनाते हैं । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि खनिज सांद्र से एक शुद्ध मध्यमवर्गीय यौगिक बनाया जाये जिसके अपचयन से लगभग शुद्ध धातु प्राप्त की जा सके ।

ग) विरलधातु क्योंकि अल्प मात्रा में उपस्थित अशुद्धियों के प्रति अतिसंवेदनशील है अतः परिष्करण की नई विधियाँ अपनाकर शुद्ध धातु प्राप्त की जाती है । इन धातुओं के हर प्रक्रम में अत्याधिक सावधानी बरतनी पड़ती है ताकि फिर से धातु वातावरण से अशुद्धियाँ ग्रहण न कर ले ।

इन विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विरल धातुओं के निष्कर्षण क्रम में सबसे पहला स्थान खनिज सज्जीकरण द्वारा कच्चे माल की ध्यानयुक्त तैयारी का है फिर, प्रारंभिक खनिज से हानिकारक अशुद्धियों निराकरण, शुद्ध यौगिक का निर्माण और यौगिक अपच द्वारा धातु प्राप्ति के आते है । आमतौर से निष्क अधियोजना को दो भागों में बाँटा जा सकता है । पहले भ का संबंध पृथक्कीकरण व दूसरे भाग का संबंध अपच एवं अधिशोधन आदि धातु कार्मिक क्रियाओं द्वारा धातु निर्माण से है ।

पृथक्कीकरण :

निष्कर्षण अधियोजना के अन्तर्गत पृथक्कीक दो चरणों में किया जाता है । पहले चरण में भौति सज्जीकरण एवं दूसरे में रासायनिक सज्जीकरण किया ज है ।

भौतिक सज्जीकरण में सर्व प्रथम अवचूर्णन द्व विभिन्न खनिजों को विमुक्त किया जाता है । तत्पश्चात विभि खनिजों के विभिन्न गुणधर्मों को प्रयोग में लाते हुए खनि को अलग अलग किया जाता है । इन भौतिक क्रियाओं खनिजों के बाह्य रुप, आकार, आपेक्षित घनत्व, बाहरी सत के गुणधर्म, चुम्बकीय गुणधर्म एवं विद्युतीय गुण धर्मों आ में अन्तर का उपयोग किया जाता है । तालिका -3 खनिजों के गुणधर्म और उन पर आधारित पृथक्कीकरण व विधियाँ दी गई हैं । साधारणतया एक से अधि पृथक्कीकरण की विधि के प्रयोग द्वारा ही खनिज सांद्र तैय की जाती है । केरल के समुद्री किनारों (चौपाटी) पर मिल वाली खनिज रेत एक बहु खनिज स्रोत है और इससे विभि खनिज सांद्र प्राप्त की जा सकती है ।

भौतिक पृथक्कीकरण के पश्चात सज्जित खनिजों व ताप धातुकर्मीय एवं जल धातुकर्मीय विधियों का प्रयो करते हुए समृद्धिकृत किया जाता है । इन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत भाजन, निक्षारण, ठोस-द्रव पृथक्कीकरण, घोल शुद्धीकरण, अवक्षेपण, भस्मीकरण आदि उपचरणों द्वारा शुद्ध यौगिकों का निर्माण किया जाता है । इन यौगिकों की शुद्धत का स्तर उत्पादित धातु की अपेक्षित शुद्धता के लगभग बराबर होता है । इस प्रकार प्राप्त धातु यौगिक ही विरल धातुओं के उत्पादन के प्राथमिक स्रोत की तरह प्रयोग में लाये जाते है । विरल धातुओं में शुद्ध धातुओं के रासायनिक

ाधर्म लगभग एक जैसे होते हैं जब कि उनके कुछ भौतिक ाधर्म काफी भिन्न होते है । इसलिये कुछ उच्च तकनीकी ायोगिताओं में जैसे कि नाभिकीय उपयोग के लिये फनियम की उपस्थिति जिरकोनियम में तथा टेन्टेलम की योबियम में अवांद्नीय है तथा कैपेस्टिर बनाने के टेन्टेलम र्ग में नायोबियम तथा अन्य धात्विक तत्व अवांद्नीय शुद्धियाँ मानी जाती हैं । जिरकोनिय-हॉफनियम, योबियम-टेन्टेलम अथवा विरल मृदा धातुओं को पृथक ने के लिये विलायक निष्कर्षण विधि का प्रयोग किया ता है । इस विधि में धातु यौगिक की जल या कार्बनिक लायक में घुलनशीलता के अन्तर का उपयोग किया जाता । इसी तरह आयन विनिमय विधि द्वारा शुद्ध यौगिकों की प्ति की जा सकती है ।

चयन एवं अधिशोधन :

परिष्कृत रासायनिक यौगिकों से कार्बन, हाइड्रोजन धात्विक अपचयन द्वारा शुद्ध अथवा अशुद्ध धातु प्राप्त की सकती है । अपचयन के समय संक्रमण (या दूषित) होने संभावना होती है जिसके प्रति विशेष सावधानी रखना यावश्यक है । इनका निष्कासन यदि असंभव नही तो टेल अवश्य है । अपचयन की विधि का चुनाव धातु की छित शुद्धता एवं धातु की विभिन्न अपद्रव्यों के प्रति ेदनाशीलता पर निर्भर करता है । इसके अतिरिक्त चयित धातु में से कुछ अपद्रव्यों को जैसे कि नाइट्रोजन, क्सीजन व हाइड्रोजन को नायोबियम, टेन्टेलम, लिब्डेनम एवं टंगस्टन से उच्चतापीय क्रियाओं द्वारा ष्कासित किया जा सकता है जबकि कुछ अन्य धातुओं े जिरकोनियम, टाइटेनियम एवं वेनेडियम से आक्सीजन ं नाइट्रोजन को निष्कासित करने के अधिकांश प्रयास फल रहते हैं । अतः विरल धातुओं के उत्पादन के लिये ी तो अयस्क, कभी क्लोराइड तथा कभी फ्लोराइड गिकों का प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार अपचायक में कार्बन, हाइड्रोजन, सोडियम, मैग्नीशियम, ल्युमिनियम तथा कैल्शियम का प्रयोग किया जाता है, कुछ ल मृदा धातुओं के अपचयन में लैन्थेनम का प्रयोग एक चायक के रुप मे किया जाता है । इन रासायनिक चायकों के अतिरिक्त विद्युतीय विखंडन द्वारा धातु की प्ति भी की जा सकती है.

अपचायिक धातुओं का शुद्धिकरण, उष्ण-निर्वात प्रक्रिया, इलेक्ट्रान बीम द्रवीकरण या निर्वात आर्क द्रवीकरण अथवा विद्युतीय अतिशोधन द्वारा किया जा सकता है । उष्ण निर्वात एवं द्रवीकरण प्रक्रियाओं में धात्विक अपद्रव्य जैसे कि मैग्नेशियम, अल्युमिनीयम, कैल्शियम, लोह, सिलिकॉन, मैंगनीज, क्रोमियम आदि आसानी से वाष्पीकरण द्वारा निष्कासित किए जा सकते हैं । इन सभी द्रव्यों का वाष्प दाब, उच्चतापसह धातुओं के वाष्प दाब तथा भट्टी में प्रचलित दाब से कही अधिक होते हैं अतः सभी द्रव्य वाष्पीकरण द्वारा अपनी न्यूनतम सीमा तक निष्कासित किये जा सकते हैं । इसी प्रकार विभिन्न गैसीय अपद्रव्य भी निष्कासित किये जा सकते हैं, लेकिन कुछ धातुओं में गैसीय अपद्रव्य स्थाई यौगिक बनाते हैं जिनका वाष्पीकरण द्वारा निष्कासित करना अति जटिल या लगभग एक असंभव कार्य है । उष्ण निर्वात एवं द्रवीकरण प्रक्रियायें नायोबियम, टेन्टेलम, मोलिब्डेनम, टंगस्टन एवं हॉफनियम के लिए काफी प्रभावी सिद्ध हुई हैं । विद्युतीय अधिशोधन वेनेडियम के लिये काफी प्रभावी है और इस प्रक्रिया का उपयोग स्क्रैप से शुद्ध जिरकोनियम एवं टाइटेनियम के उत्पादन में किया जाता है । विद्युतीय अतिशोधन विरल धातुओं के लिए अधिकांशतः पिघले लवण में किया जाता है । इस प्रक्रिया में अशुद्ध धातु को एनोड तथा शुद्ध धातु को कैथोड बनाया जाता है । शुद्धिकृत धातु कैथोड पर आ कर एकत्र हो जाती है । इन दो प्रक्रियाओं के अतिरिक्त आयोडाइड अतिशोधन जिरकोनिमय, टाइटेनियम एवं हॉफनियम के उत्पादन में प्रयोग में लाया जाता है । आयोडाइड अधिशोधन कार्य ऐसे रिएक्टर में किया जाता है जो कि इन्कोनल धातु से बना होता है । इसमें कम तापक्रम पर आयोडाइड को बनाया जाता है जिसके उच्चताप पर विघटन से शुद्ध धातु की प्राप्ति होती है ।

विरल एवं उच्चतापसह धातु अभी तक उच्च तकनीकी उपयोगिता में ही प्रयोग में लाए जाते हैं । इन धातुओं का अन्य क्षेत्रों में उपयोगिता पर अभीतक समुचित ध्यान नही दिया गया है । नए क्षेत्रों में इनकी उपयोगिता बढ सकती है जिससे कि इनके उत्पादन और खपत में विशेष ध्यान दिया जा सकता है और उत्पादन लागत कम की जा सकती है ।

* * *

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

खनिज तेल मूल्यांकन एवं महत्व

- योगेन्द्र कुमार शर्मा, वैज्ञानिक
भारतीय परितेलन संस्थान, देहरादून - 248 005 (उ.प्र.)

पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त बहुमूल्य खनिज तेल का सही एवं उत्तमतम उपयोग करने के लिए उसका मूल्यांकन एक अत्यन्त आवश्यक प्रक्रिया है । यह लेख उनके परिशोधन तथा गुणवत्ता जांच से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है ।

वर्तमान युग में खनिज तेल प्रत्येक व्यावसायिक इकाई की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है । भारतवर्ष एक विकासशील देश है । प्रगति की निरन्तर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए सन् 1960-61 से 1990 तक खनिज तेल की उत्पादन क्षमता 450,000 टन से बढ़कर 34,087,000 टन हो गई है । औद्योगिक रुप से सक्षम हो पाने के लिऐ यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि खनिज तेल के विभिन्न उत्पादों को उचित गुणवत्ता के आधार पर औद्योगिक इकाईयों एवं उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाय । वस्तुतः खनिज तेल के उचित मूल्यांकन की एक विशेष भूमिका है ।

यथार्थ में खनिज तेल पृथ्वी के गर्भ में छिपी बहुमूल्य सम्पदा है । मूल रुप में खनिज तेल हरे या गाढे रंग का तरल अथवा अर्धतरल पदार्थ है जो मुख्यतः कार्बन एवं हाइड्रोजन से निर्मित यौगिकों का जटिल मिश्रण है जिसमें वैनेडियम, निकिल, ताँबा एंव लोहा जैसी धातुयें बहुत सूक्ष्म मात्रा में एवं गन्धक व नाइट्रोजन आंशिक अशुद्धियों के रुप में उपस्थित होते हैं ।

भारतवर्ष में खनिज तेल को भूगर्भ से निकालने के लिए तेल एंव प्राकृतिक गैस आयोग, एंव आयल इन्डिया लिमिटेड़ जैसी इकाईयाँ कार्यरत हैं जिसमें शैल, एंव शैवेरान टैक्सको जैसी अन्तर्राष्ट्रीय इकाईयाँ भी सहयोग देती रही हैं ।

खनिज तेल मूल्यांकन का आधार उसमें उपस्थित, उपयोगी उत्पादों की मात्रा का निर्धारण करना ही नहीं, वरन् गुण एवं कार्य सम्पादन की दृष्टि से उनकी उपयोगिता का निर्धारण करना भी हैं ।

मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं :

1. खनिज तेल में मूलतः उपस्थित पेट्रोलियम उत्पादों क निर्धारण करना ।
2. निर्दिष्टीकरण हेतु आवश्यक प्रक्रम को निर्दिष्ट करन तथा तत्सम्बन्धित प्रक्रम के लिए अनुमानित व्यय क निर्धारण करना ।
3. उपभोक्ताओं तक उत्पादों को उत्तम रुप में पहुँचाने के लिए उनके मिश्रण का विशिष्ट अनुपात निर्धारि करना ।
4. खनिज तेल का मूल्य निर्धारण करना ।

किसी विशेष खनिज तेल के परिशोधन के लि इसके प्रारम्भिक गुणधर्म तथा इसमें अशुद्धियों की मात्रा, जैसे कि सल्फर, लवण और पानी इत्यादि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है । आइये अब एक दृष्टि खनिज तेल मूल्यांकन की जटिल प्रक्रिया पर डालें ।

मुख्यतः अध्ययन किये जाने वाले गुणों एव अशुद्धियों का विवरण तालिका - 1 में दिया गया है ।

इन गुणों एंव अशुद्धियों को ज्ञात करने के पश्चात आसवन किया जाता है ।

आसवन :

उक्त परीक्षणों के पश्चात खनिज तेल में व्याप्त जल मात्रा का ज्ञान हो जाता है । यदि जल मात्रा अधिक होती है तो आसवन से पूर्व निर्जलीकरण आवश्यक है । जल की अधिक मात्रा वाष्प के रुप में व्याप्त हो, आसवन प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है एवं अधिक जलवाष्प के दबाव से आसवन स्तम्भ में जलमग्नता हो जाती है । अतः रिक्त स्तम्भ का प्रयोग कर सत्य क्वथनाँक आसवन के माध्यम से खनिज तेल को निर्जलीकृत करते हैं । इस प्रक्रिया में 120 डिग्री

तालिका - 1

मूल्यांकन हेतु मूलगुण एवं अशुद्धियां

मूलगुण	*अशुद्धियाँ*
* घनत्व तथा अमेरिकन पेट्रोलियम गुरुत्व	* जलमात्रा
* श्यानता	* लवण मात्रा
* परिव्लवन बिन्दु	* गन्धक मात्रा
* रीड़ वाष्प दाब	* नाइट्रोजन मात्रा
* कार्बन अवशेष	* अकार्बनिक एंव
* आसवन अभिलक्षण	* कार्बनिक अम्ल
* राख मात्रा	
* मोम मात्रा	
* एस्फाल्टीन मात्रा	
* आधार	

लेसयस वाष्प ताप तक (किसी पश्चवाही का उपयोग किये ना) खनिज तेल को जलविमुक्त किया जाता है । इस प्रकार त हुए जल में कुछ हाइड्रोकार्बन आसावित हो आते हैं न्हें पानी से पृथक कर ठन्डा होने पर खनिज तेल अवशेष नुनः मिश्रित कर दिया जाता है ।

प्राप्त अवशेष से सत्य क्वथनाँक प्रभागशः आसवन ा विभिन्न उत्पादों का पृथकीकरण किया जाता है । इस म्भ की विशेषता यह है कि यद्यपि इसमें वास्तविक धारों की संख्या तीस होती है तथापि सैद्धांतिक रुप से ह आधारों के ही समतुल्य होते हैं । प्रत्येक वास्तवित धार के मध्य की दूरी निश्चित होती है । मध्य के रिक्त ान में खनिज तेल की मिश्रित वाष्प संघनित अवस्था में त्रित हो जाती है । जब पुनः विभिन्न क्वथनाँकों की श्रेत वाष्प इन आधारों से गुजरती है तो इन वाष्पों की ना संघनित द्रव द्वारा अवशोषित हो जाती है । अतः ातम क्वथनाँक युक्त वाष्प ही स्तम्भ में ऊपर की ओर सर होती है । यह प्रक्रिया तब तक होती रहती है जब तक यह वाष्प के ठन्डे द्रव के सम्पर्क में नहीं आ जाती है । ीकरण के फलस्वरुप न्यूनतम क्वथनाँक का घटक रुप में स्तम्भ की ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाता है । इस प्रभागशः आसवन में संघनन एंव वाष्पीकरण की दर जितनी अधिक होगी स्तम्भ की पृथक्कीकरण क्षमता उतनी ही अधिक होगी । तत्पश्चात प्राप्त घटक पश्चवाही शीर्ष से शुद्ध हो भित्रकर्तक द्वारा पृथक्कीकृत कर ग्राही द्वारा एकत्रित किया जाता है । इस आसवन में पश्चवाही अनुपात (10 : 1) का स्थापित कर 200 डिग्री सें. वाष्पताप तक गर्म कर के मोटर स्पिरिट (नैफ्था) तथा मिट्टी के तेल का कुछ भाग प्राप्त कर लिया जाता है ।

तदोपरान्त 200 डिग्री सें. वाष्प ताप से ऊपर के उत्पादों की प्राप्ति हेतु 20 मि. मी. वायुमण्डलीय दाब स्थापित कर निर्वात आसवन का प्रयोग किया जाता है । जिससे कि उनके मूल स्वरुप का अपदलन न हो । इस आसवन द्वारा 250 डिग्री सें. वाष्पताप तक मिट्टी के तेल का शेष भाग एंव 250 डिग्री सें. से 370 डिग्री सें. वाष्पताप तक सम्पूर्ण डीजल प्राप्त कर लिया जाता है । इस आसवन विधि के समापन पर हमें 370 डिग्री सें. का दीर्घावशेष प्राप्त हो जाता है ।

प्राप्त अवशेष से हमें स्नेहकतेल, एवं मोम इत्यादि निकालना होता है । इसके लिए दीर्घावशेष का 200 मि.ली. ए. एस. टी. एम. (डी. 1160) प्रक्रम से आसवन करते हैं । इसमें अत्याधिक सम्वेदनशील दाब मापी का प्रयोग कर वायुदाब को एक मि. मी. से भी कम कर दिया जाता है तथा प्रत्येक आसवित उत्पाद की प्राप्त प्रतिशत मात्रा उनके वाष्पताप के अनुकूल ज्ञात कर ली जाती है । तत्पश्चात ए. एस. टी. एम. वक्र द्वारा उच्चतम वाष्पताप पर आसवित उत्पादों के कुल आयतन को ज्ञात कर लिया जाता है ।

इसी गणना के आधार पर सर्निया उच्च निर्वात प्रक्रम से स्नेहक तेल व मोम की मात्रा एंव अपदलन भोज प्राप्त कर लेते हैं । इस प्रक्रम में रिक्त स्तम्भ का प्रयोग कर एक मि. मी. सें. भी कम वायुदाब पर उपर्युक्त घटकों की प्राप्ति कर ली जाती है तथा अन्त में बचे लघुअवशेष 550 + डिग्री सें. का प्रयोग कोलतार एवं विट्युमिन आदि में होता है । अन्ततः आसवन की जटिल प्रक्रिया की समाप्ति पर खनिज तेल में विद्यमान मुख्य उत्पाद प्राप्त हो जाते है जो तालिका - 2 में निर्दिष्ट हैं ।

तालिका - 2	
उत्पाद	किस्म
खाना पकाने की गैस पैट्रोल अथवा मोटर स्पिरिट	हल्के उत्पाद
मिट्टी का तेल, डीजल	मध्यासवित उत्पाद
ईंधन तेल, स्नेहक तेल, मोम, विट्युमिन व कोलतार	भारी उत्प ाद

आण्विक आसवन एवं इसका महत्त्व :

खनिज तेल विश्लेषण के क्षेत्र में आण्विक आसवन का विशेष महत्त्व है । प्रभागशः आसवन से प्राप्त लघुअवशेष को मात्र कोलतार, विट्युमिन अथवा श्यानता स्खलन भोज्य के रुप में ही प्रयोग कर सकते हैं किन्तु आण्विक आसवन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के माध्यम से 550 डिग्री सें. वाष्पताप से भी ऊपर लघु अवशेष को गर्म कर उपयोगी उत्पादों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है ।

इस प्रक्रम में वाष्पित एंव संघनित सतह के मध्य अणुओं की दूरी उनके मध्य स्वतन्त्र मार्ग से कम हो जाती है फलतः आसवन की दर अधिक से अधिक हो जाती है ।

अणुभट्टी को इस प्रकार निर्मित किया जाता है कि वाष्पित अणु अन्य वाष्पित अणुओं से टकराकर पीछे नहीं लौटते, वरन् सीधे ही संघनित्र में प्रवेश कर जाते हैं । परिणाम स्वरुप वाष्पन की दर वाष्प घनत्व एवं अणुवेग के समानुपाती हो जाती है । अणुओं की गति सीधे होने के कारण द्रव एवं वाष्प के मध्य कोई साम्यावस्था नहीं होती है अतः वाष्पदाव, द्रव के वाष्पदाव से साम्यावस्था में काफी कम रह जाता है । अणु आसवन की प्रमुख आवश्यकताएँ निम्नांकित हैं ।

1. दाब अन्तराल को कम करने के लिए शून्य दाब व्यवस्था का बृहत होना ।
2. वाष्पित एंव संघनित सतह की दूरी अणुओं के मध्य स्वतन्त्र मार्ग से कम होना ।
३. आसावित पदार्थों को पूर्णतः गैस मुक्त होना ।

सर्निया उच्च दाव आसवन साधित्र

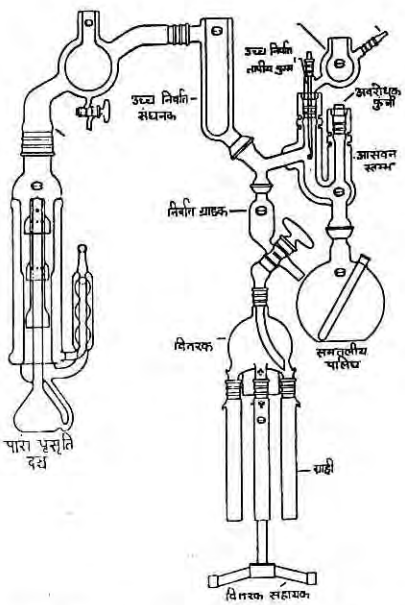

ताप संवेदनशील पदार्थों (जिनका अणुभार लगभग 250 से 1200 के मध्य हो) के लिए अणु आसवन का विशेष महत्त्व है ।

आसवित उत्पादों का मूल्यांकन :

मूल्यांकन दो स्तरों पर किया जाता है :-

1. लघु मूल्यांकन - इस मूल्यांकन में खनिज तेल के भौतिक एवं रासायनिक गुण, तथा दीर्घावशेष तक प्राप्त उत्पादों का अभिलक्षणन किया जाता है ।

2. बृहत् मूल्यांकन - लघु अवशेष तक प्राप्त सभी उत्पादों का गहन अध्ययन कर अभिलक्षणन किया जाता है ।

अभिलक्षन हेतु निम्न मूल गुणों को मापा जाता है :

अ) परिव्लवन बिन्दु एंव श्यानता - परिव्लवन बिन्दु एवं श्यानता का खनिज तेल मूल्यांकन के क्षेत्र में विशेष महत्व है । इनका कार्य खनिज तेल एंव उत्पादों की पाइप लाइन व पम्पों में बहने की क्षमता को दर्शाना है ।

ब) मोम मात्रा - साधारणतः सी16 (C16) से ऊपर के हाइड्रोकार्बन पैराफीन कमरे के ताप पर ठोस अवस्था में परिवर्तित होने लगते हैं, जो खनिज तेल, डीजल, व शून्यक गैस तेल के बहने सम्बन्धी गुणों को प्रभावित करते हैं । अतः इनका आकलन ऐंग्लर होल्ड विधि द्वारा ईथर व ऐल्कोहल

लायक प्रयुक्त कर 20 डिग्री सें. ताप पर छान कर किया ता है यह मोम मात्रा खनिज तेल से स्नेहक तेल की प्राप्ति भी निर्दिष्ट करती है ।

भारतीय खनिज तेलों में मोम मात्रा अधिक होने के रण वे स्नेहक तेल निर्माण में अक्षम होते हैं ।

एस्फाल्टीन कार्बन अवशेष एंव राख मात्रा - एस्फाल्टीन नाभिकीय ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन होते है जो परस्पर ड्रोजन, सल्फर अथवा आक्सीजन द्वारा जुड़े होते है इनका गुभार काफी अधिक होता है । एस्फाल्टीन व कार्बन वशेष की मात्रा में खनिज तेल में उपस्थित भारी ड्रोकार्बनों का बोध कराती है जबकि राख मात्रा खनिज ा व उत्पादों में उपस्थित सूक्ष्मतम तत्वों को दर्शाती हैं ।

रीड़वाष्प दाब - ये वाष्पदाब खनिज तेल में उपस्थित के हाइड्रोकार्बन एवं गैसों के आपेक्षिक प्रतिशत अनुपात निर्दिष्ट कराती है । इनमें से कुछ का विवरण यहां दिया ा है ।

निज तेल मूल्यांकन में आधुनिक उपकरणों की महत्ता :

खनिज मूल्यांकन के क्षेत्र में आधुनिक उपकरणों के ोग से एक नई क्रान्ति आयी है । इनमें से कुछ का विवरण ं दिया गया है ।

त्व मापक - घनत्व का मुख्य उपयोग संहति से आयतन कलन में, तेल शोधक कारखानों के संचालन नियन्त्रण में, विभिन्न सहसंबन्धों के प्रस्थापित करने में होता है । अतः त्व को शुद्धता के साथ शीघ्रता पूर्ण मापने की वश्यकता होती है । इस काम के लिए प्रयोग में लाये जाने ले उपकरणों मे "पार" कंपनी द्वारा निर्मित मॉडल डी. एम. - 45 काफी प्रचलित है । इस उपकरण से खनिज उत्पादों घनत्व कुछ ही सैकेन्ड में ज्ञात हो जाता है । इसमें प्रयुक्त ालक की आवृत्ति इलेक्ट्रॉनिक विधि द्वारा उत्पादों के अंश ा से ही प्रभावित हो जाती है, जो इस स्थिति को सीधे त्व के रुप में अंकित कर देता है । इससे पूर्व घनत्व नोमीटर इत्यादि उपकरणों से ज्ञात किया जाता था जिसमें की समय लगता था ।

ा मात्रा मापक - इस जलमापक द्वारा 10 माइक्रोग्राम से र 10 मि. ग्राम तक जल मात्रा का आकलन कुछ सैकेन्ड कर लिया जाता है । इसमें जल मात्रा सीधे ही पटल पर कित हो जाती है । यह उपकरण कूलोमीटर कार्ल फिशर दीक्षण पर आधारित है । सिद्धांततः इस संयन्त्र में आयोडीन का एक अणु पानी के एक अणु से क्रिया करता है । फलस्वरुप 1 मि. ग्राम पानी 10.71 कूलम्ब के समतुल्य होता है । इस विद्युतीकरण हेतु विद्युत की मात्रा सीधे ही जल मात्रा को अंकित करती है । पहले उपयोग में आने वाला कार्लफिशर उपकरण कम से कम एक घंटे का समय लेता था ।

स्वचालित इयदीक्षक - इस संयन्त्र में सूक्ष्म विधायक नियन्त्रक तथा एक संरचित निद्वार रश्मिनाल पटल होता है जो इयदीक्षण को नियन्त्रित रखता है एवं अपकुञ्चन बिन्दु को स्वतःआकलित करता है । इस संयन्त्र से हर प्रकार के सम्भव अम्ल, क्षारइयदीक्षक, नरवरीयण मापक इयदीक्षक, निस्सादन इयदीक्षक, आक्सीकरण - अपकरण इयदीक्षक, कर सकते है और इस प्रकार खनिज तेल व उत्पादों में मरकैप्टन सल्फर व अम्लीयता ज्ञात करते हैं ।

नाइट्रोजन विश्लेषक - इस संयन्त्र द्वारा मात्र 30 सैकेन्ड में सम्पूर्ण नाइट्रोजन का आकलन कर दिया जाता है । ये संयन्त्र रसायचकासा प्रकरण पर आधारित होता है । इसमें उत्पादों की सम्पूर्ण नाइट्रोजन को 100 डिग्री सें. तापमान पर आक्सीकृत कर नाइट्रोजन आक्साइड में परिवर्तित कर लिया जाता है जो ओजोन से क्रिया कर भासस्थाई नाइट्रोजन डाइआक्साइड बनाती है । ये नाइट्रोजन डाइआक्साइड जब स्थाई अवस्था में आती है तो प्रकाश उत्सर्जित करती है जो प्रकाशगुणक नलिका द्वारा माप दिया जाता है । इस कार्य के लिए एन्टैक मॉडल - 620 नाइट्रोजन विश्लेषक काफी प्रचालित है ।

इससे अत्यन्त उच्च कोटि के परिणाम :- (20 पी. पी. बी. से लेकर 3 प्रतिशत नाइट्रोजन) प्राप्त होते हैं । इससे पूर्व जैल्ड़ाहल विधि द्वारा नाइट्रोजन आकलन 6 घंटों में किया जाता था ।

सल्फर मापक - सल्फर एक अत्यन्त अवांछनीय तत्व है इसका आकलन अब आक्सीकृत सूक्ष्म कूलम्बमापक द्वारा 10 सैकेन्ड में कर लिया जाता है । इस संयन्त्र से 1 पी. पी. एम. से लेकर 200 पी. पी. एम. तक आकलन हो जाता है । इससे अधिक गन्धक मात्रा (100 पी. पी. एम. से 10 प्रतिशत) आक्सफोर्ड कंपनी का मॉडल लैब-एक्स - 2000 द्वारा केवल 100 सैकेन्ड में माप दिया जाता है । इससे पूर्व

(शेष भाग पृष्ठ 33 पर)

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (१९९१) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

हृदय रोगों से बचाव में हमारे आहार और व्यवहार का योगदान

- त्रिभुवन नाथ उपाध्याय, वैज्ञानिक अधिका
रक्षा शरीरक्रिया एवं सम्बद्ध विज्ञान संस्था
दिल्ली छावनी - 110 01(

आज के जीवन का अवश्यंभावी "तनाव", शरीर-तंत्र विशेषकर हृदय को कई तरह से क्षति पहुंचाता है । समय की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए इससे पूरी तरह बचना शायद संभव नहीं परंतु इस पर नियंत्रण रखना इसके दुष्परिणामों से बहुत हद तक बचा सकता है । जीवन पद्धति और आहार-विहार में अनुकूल परिवर्तन से इस युग के प्रमुख मारक 'हृदय रोग' से बचाव किया जा सकता है ।

एड्स और कैंसर के बाद मनुष्य हृदय रोगों से सबसे अधिक घबराता है क्योंकि संसार के सभी विकसित देशों में करीब एक तिहाई लोग हृदय की बीमारियों से ही मरते हैं । एक नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार हजार में से औसतन एक बच्चा हृदय की जन्मजात (कंजेनिटल) विकृतियों के साथ जन्मता है और अपनी जवानी की दहलीज़ पर पैर रखने से पहले ही इस संसार से कूच कर जाता है । हृदय की ये विकृतियां उसकी मूल संरचना में परिवर्तन, उसमें छिद्रों की उपस्थिति या उसके वाल्वों के गलत ढंग से निर्माण के कारण होती हैं । कई बार ये वाल्व अत्यधिक संकुचित होते हैं तथा कभी-कभी हृदय की प्रमुख रक्त वाहिकाएं आपस में गलत ढंग से जुड़कर भी उसमें विकृतियां उत्पन्न कर देती हैं ।

हमारे देश में लाखों व्यक्ति हृदय के आमवातीय (रूमैटिक) रोगों से ग्रस्त हैं । ये रोग बचपन में रूमैटिक ज्वर से प्रारम्भ होते हैं और बाद में इसी कारण हृदय के वाल्व क्षतिग्रस्त हो जाते हैं ।

हृद-धमनी (कोरोनरी आर्टरी) या हृदय में रक्त संचार की कमी (इस्कीमिक) से संबन्धित रोगों में हृद-धमनी की आन्तरिक दीवारों पर रुधिर-वसा (मुख्यतः कोलेस्टेराल, फास्फोलिपिड तथा ट्राईग्लिसराइड) जमने लगती है जिससे उसका लचीलापन कम होने लगता है । तथा वह काठ की तरह कठुआ जाती है । इस कठोरता के कारण हृदय को भरपूर मात्रा में रक्त नहीं मिल पाता है । जब व्यक्ति के हृदय के किसी भाग को रक्त मिलना बंद हो जाता है तब हृदय के उस भाग विशेष की मृत्यु हो जाती है और कहा जाता है f उस व्यक्ति को दिल का दौरा पड़ गया है । पश्चिम के अत्य सम्पन्न लोगों में ज्यादा यह रोग देखा गया है और सम्भव इसी कारण इसे अमीरों की बीमारी भी कहते हैं । परन्तु हम देश में भी समाज के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लोग अपने जीवन बहुत उपयोगी काल में ही इस बीमारी की चपेट में आने ल हैं और अब यह अपने देश में भी तकरीबन विकसित देश की गति से ही फैलती जा रही है ।

हृदय रोंगों के कुछ प्रमुख कारक :

स्वदेश तथा विदेशों में किये गए शोधकार्यों अवलोकन से हमें यह ज्ञात होता है कि हमारी दिनचर्या नियमित व्यायाम की कमी, निष्क्रिय जीवन पद्धति, आधुनि जीवन की विसंगतियां, उनसे उत्पन्न तनाव और उस तना को दूर करने के उद्देश्य से अत्यधिक मात्रा में किया ग धूम्रपान, किसी न किसी बहाने मदिरापान करने की लत वा लोग हृदय रोंगों की चपेट में जल्दी आते हैं । कुछ व्यक्ति में समय बोध बहुत अधिक होता है जिसके कारण वे हमेश जल्दी में रहते हैं । ये लोग अपने जीवन में हर वस्तु को प्रा करने की होड़ में अपने आपको सबसे आगे रखने के आ होते हैं और हर प्रकार के जोड़ तोड़ में लगे रहते हैं । हमेश चिन्तित और मानसिक तनाव में रहने वाले इन लोगों को "ए प्रकार के व्यक्तित्व का स्वामी समझा जाता है । ऐसे लोग ह हृदय रोगों की चंगुल में जल्दी फँस सकते हैं । कुछ परिवा में हृदय की बीमारियां वंशानुगत होती हैं जो कि परिवार

दस्यों को समय-असमय अपनी पकड़ में ले लेती हैं । हिलाओं की तुलना में पुरुष हृदय रोगों से अधिक प्रभावित ते हैं । शारीरिक स्थूलता या मोटापा भी हृदय रोगों को ामंत्रित करता है । इसके अतिरिक्त रुधिर परिसंचरण में ामान्य से बहुत अधिक मात्रा में वसीय पदार्थों (कोलेस्टेराल ौर ट्राइग्लिसराइड) की उपस्थिति, उच्च रक्त दाब तथा धुमेह (डाएबेटीज मेलाइटस) भी मनुष्य को हृदय रोगों की ंफ ढकेलने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं ।

दय रोगों में आहार का महत्व :

हृदय रोगों का पूर्वानुमान और उसकी पहचान के ाषय में हमारा ज्ञान, इनसे सम्बन्धित अनुसंधान कार्यों के ाध्ययन से काफी बढ़ा है । आज हम यह तथ्य पूरी तरह से ान गए हैं कि इन रोगों के कुछ मुख्य कारकों को प्रभावित रने में हमारे आहार का महत्वपूर्ण स्थान है ।

) वसा का अन्तरग्रहण (फैट इंटेक) - खाद्य वसा हमारे ाहार का एक प्रमुख घटक है क्योंकि शरीर के लिए दैनिक र्जा आवश्यकता की करीब 20 से 30 प्रतिशत ऊर्जा ापूर्ति हमें इसी घटक से होती है । अत्यन्त आवश्यक संतृप्त (अनसैचुरेटेड) वसीय अम्ल और वसा में लनशील विटामिन भी शरीर को खाद्य वसा से ही प्राप्त ते हैं । रुधिर में प्रवाहित होने वाले वसीय पदार्थों को ायंत्रित सीमा में बनाए रखने में वसा की मात्रा और किस्म ा विशेष महत्व हैं । शुद्ध देशी घी, वनस्पति तेलों और नस्पति घी तथा मक्खन इत्यादि का हम वसा के रूप में पयोग करते हैं । इसके अतिरिक्त प्रायः अधिकांश खाद्य दार्थों में भी वसा की कुछ मात्रा नैसर्गिक रूप में विद्यमान ती है । ऐसा देखा गया है कि जैसे जैसे हमारा जीवन स्तर धरता जाता है वैसे वैसे हमारे आहार में वसा की मात्रा भी ढ़ती जाती है । समाज में एक अच्छी स्थिति बन जाने के श्चात दिन प्रतिदिन दावतों के आदान प्रदान का सिलसिला ी चल पड़ता है जिनमें प्रायः वसा बहुल गरिष्ठ व्यंजन रोसे जाते हैं । आहार में वसा की बढ़ी हुई मात्रा रुधिर रिसंचरण में वसीय पदार्थों (विशेषकर कोलेस्टेराल और ईग्लिसराइड) के स्तर को सामान्य से बहुत अधिक बढ़ा ती है । इस स्थिति को अति कोलेस्टेराल रक्तता तथा अति ईग्लिसरइड रक्तता कहते हैं । रक्त में इन पदार्थों की बढ़ी हुई मात्रा रुधिर वाहिकाओं में जमकर उनकी आन्तरिक दीवारों को संकुचित बना कर रक्त प्रवाह की गति को कम कर देती है, जिसके कारण "एथेरोस्कलीरोसिस" नामक असामान्यता का जन्म होता है । वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि समाज के जिस वर्ग विशेष के लोगों के आहार में वसा से प्राप्त होने वाली ऊर्जा कुल दैनिक आहारीय ऊर्जा की 30% से अधिक हो जाती है वे अति कोलेस्टेराल रक्तता की स्थिति में आने लगते हैं । लेकिन जो लोग सक्रिय जीवन पद्धति अपनाते हैं उनका शरीर वसा का उपयोग सुचारु रूप से कर लेता है और वे इस स्थिति से कम प्रभावित होते हैं ।

हमारे द्वारा प्रतिदिन आहार में प्रयुक्त वसा की किस्म भी रुधिर कोलेस्टेराल स्तर को प्रभावित करती है । नारियल तेल के अतिरिक्त वनस्पति स्रोतों से प्राप्त तेलों (तिल, सरसों, मक्का, कपास, सीसम, मूंगफली और सोयाबीन) का उपयोग करने से रुधिर कोलेस्टेराल का स्तर सामान्य बना रहता है क्योंकि इन तेलों में बहु-असंतृप्त वसीय अम्लों की अधिकता होती है । जन्तु स्रोतों से प्राप्त वसा (मक्खन, अंडा) में संतृप्त वसीय अम्लों की प्रचुरता होती है और आहार में इनकी अधिकता होने पर रुधिर कोलेस्टेराल का स्तर बढ़ जाता है । वनस्पति तेलों को हाइड्रोजनीकृत करके वनस्पति घी में बदलते समय उसमें संतृप्तता आ जाती है, इसका भी अधिक मात्रा में सेवन करने से रुधिर में कोलेस्टेराल की मात्रा बढ़ती है । मांसाहार में कोलेस्टेराल प्राकृतिक रूप से मौजूद होता है और इनका उपयोग भी रुधिर में कोलेस्टेराल के स्तर को बढ़ाने में कारक होता हैं ।

आहार में संतृप्त वसा का अधिक उपयोग कोलेस्टेराल के स्तर को बढ़ाता है और असंतृप्त वसा का उपयोग कोलेस्टेराल के स्तर को कम करता है । वैज्ञानिकों का यह मत है कि खाद्य वसा में संतृप्त और असंतृप्त वसीय अम्लों का अनुपात एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । यहां यह बताना असंगत नहीं होगा कि एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति के प्रत्येक 100 मिली लीटर रक्त में 150-250 मिली ग्राम कोलेस्टेराल होता है और 250 मिली ग्राम से अधिक परिमाण में इसकी मात्रा व्यक्ति को धीरे धीरे अति कोलेस्टेराल रक्तता की स्थिति में पहुँचा देती है ।

(ii) **शर्करावर्गीय खाद्य पदार्थों का अन्तरग्रहण** - आहार में सरल शर्कराओं की बहुलता और जटिल शर्कराओं की न्यूनता व्यक्ति को हृदय रोगों की ओर ढ़केलती है, परन्तु अभी भी यह अन्तिम रूप से सिद्ध नहीं हो पाया है कि ये रोग केवल शर्करावर्गीय खाद्य पदार्थों के अत्यधिक उपयोग से ही होते हैं । जटिल शर्कराओं की श्रेणी में ही खाद्य रेशे आते हैं । ये रेशे न तो शरीर में पचते हैं और न ही ऊर्जा देते हैं परन्तु शरीर को निरोगी रखने में इनकी उपयोगिता निर्विवाद है । वनस्पति कोशिकाओं की बाह्य दीवारों के अनेक घटक जैसे कि सेलुलोज, हेमीसेलुलोज, लिग्निन, गोंद और पेक्टिन प्रमुख खाद्य रेशे हैं ।

सम्भवतः हुग द्रावेल नामक वैज्ञानिक ने हमें सर्वप्रथम यह जानकारी दी कि हृदय रोगों और आहारीय रेशों में विलोम अनुपात होता है अर्थात् आहार में रेशों की प्रचुरता हमें इन रोगों से बचाने तथा रेशों की कमी इनकी ओर ढ़केलने का कार्य करती है । बिना चोकर निकाला हुआ आटा, फलियां (बीन्स), दालें, शकरकंदी, अदरक, फल तथा पत्तेदार हरी सब्जियां खाद्य रेशों के उत्तम स्रोत हैं । चावल, मैदा, ब्रेड इत्यादि में रेशे अत्यन्त कम मात्रा में होते हैं । जौ की भूसी, सेब, संतरा तथा कुछ अन्य फल और कुछ सब्जियों में पाया जाने वाला एक विशेष पदार्थ पेक्टिन और गाजर का उपयोग करने से रुधिर में कोलेस्टेराल का स्तर सामान्य बना रहता है । दूध और मट्ठा का भरपूर मात्रा में उपयोग भी रक्त में बढ़े हुए कोलेस्टेराल के स्तर को कम करने की शक्ति से सम्पन्न पाए गये हैं ।

ऐसा देखा जा रहा है कि समाज के साधन सम्पन्न लोगों में परिष्कृत खाद्य पदार्थों के उपयोग की आदत बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है । ये लोग आटा के स्थान पर मैदा और उससे निर्मित ब्रेड तथा फल के स्थान पर फलों के जूस का उपयोग करना पसंद करते हैं । पहले के अमीरों द्वारा पेड़ा छीलकर खाने की उक्ति तो प्रसिद्ध है ही, आजकल के सामान्य लोग भी सेब जैसे फलों को खाने से पहले उसका छिलका उतार कर फेंक देते हैं । उनकी यह आदत उन्हें हृदय रोगों की ओर ढ़केल सकती है ।

शर्करावर्गीय खाद्य पदार्थों के अन्तरग्रहण की मात्रा पर नियंत्रण रखना इसलिए भी आवश्यक है कि वे रुधिर परिसंचरण में ट्राइग्लिसराइडों के स्तर को भी प्रभावित करते हैं । बहरहाल यह सत्य है कि आहार में बहुत अधिक ऊर्जा न हो तथा व्यक्ति शराब पीने का आदी न हो और उसके आहार में जटिल शर्कराओं की मात्रा अधिक हो तो इसकी संभावना काफी कम होगी कि उस व्यक्ति के रक्त में ट्राइग्लिसराईडों का स्तर बढ़े । हां, यह अवश्य जरुरी है कि उसका आहार अनावश्यक रूप से चीनी डालकर मधुर न बनाया गया हो ।

(iii) **आहार में नमक** - प्रतिदिन हम अपने आहार में लगभग 10 ग्राम नमक का उपयोग करते हैं । कुछ लोग आदतन अधिक मात्रा में नमक खाते हैं । अचार, चटनी तथा अन्य खाद्य पदार्थों के निर्माण में भी नमक का उपयोग एक प्रिजर्वेटिव के रूप में किया जाता है । आजकल लोग "फास्ट फूड" का उपयोग भी खुले दिल से करने लगे हैं; इनमें भी नमक तेज होता है । इन सभी कारणों से हम प्रतिदिन अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक मात्रा में नमक ग्रहण करते है । वैज्ञानिकों ने यह देखा है कि जिन लोगों के आहार में नमक की बहुत अधिक मात्रा होती है उन लोगों को उच्च रक्त चाप की चपेट में आने की संभावना अधिक रहती है । अतः हृदय की बीमारियों से बचने के लिए अपने आहार में नमक की मात्रा को कम रखना एक हितकारी कदम है ।

(iv) **अतिपोषण (ओवर न्यूट्रिशन)** - शर्करावर्गीय खाद्य पदार्थों को बनाते समय खाद्य रेशों का नाश हो जाता है । उसके बाद जो व्यंजन बनते हैं उन्हें खाने में आसानी होती है क्योंकि उनको चबाने की आवश्यकता नहीं होती है । जो लोग इन पदार्थों का अधिक उपयोग करते हैं वे न चाहते हुए भी अपनी आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण करते हैं । संयोग से यदि वे ऐसे कार्य करते हों जिनमें ऊर्जा का व्यय कम होता हो और उनकी जीवन-पद्धति भी निष्क्रिय हो तो धीरे धीरे उनका शरीर स्थूल बनने लगता है और उनके हृदय की बीमारियों की चपेट में आने की संभावना बढ़ जाती है ।

उचित आहार का चुनाव और हृदय रोगों से बचाव :

हृदय रोगों की पहचान से संबन्धित परीक्षणों की सुविधाएं देश के बड़े शहरों में प्रायः सभी चिकित्सालयों में उपलब्ध हैं । शल्य क्रिया में भी हमारे चिकित्सक अब किसी से पीछे नहीं हैं । हृदय प्रतिरोपण तक हमारे देश में किया गया है, परन्तु काफी मंहगी होने के कारण ये सभी सुविधाएं

ी भी अधिकांश लोगों की पहुंच से परे हैं । अतः ाथाम को, उपचार पर प्राथमिकता के औचित्य को स्वीकार ते हुए शारीरिक स्थूलता से बचने के लिए आहार पर ांत्रण रखना जरुरी है ।

जैसे जैसे उम्र बढ़ती है हमारी दैनिक ऊर्जा श्यकता घटती जाती है । इस स्थिति में उचित यही है यौवन और वृद्धावस्था की वय: सन्धि पर पहुंचते ही ऊर्जा ल खाद्य पदार्थों का सेवन कम कर दिया जाए । आहार में स्पति तेलों का उपयोग किया जाए तथा जन्तु स्रोतो से त वसीय पदार्थों का उपयोग कम मात्रा में करना चाहिए । ोय पोषण संस्थान, हैदराबाद के वैज्ञानिकों के अनुसार सामान्य स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन किसी भी स्थिति में ग्राम से अधिक वसा का सेवन नहीं करना चाहिए । र के उचित मात्रा में पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिदिन वनस्पति स्रोतों से प्राप्त कम से कम 15 ग्राम का उपयोग अवश्य करें ।

रुधिर में कोलेस्टेराल और ट्राईग्लिसराइडों के स्तर सामान्य सीमा में बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है हमारे आहार में अंकुरित अनाजों, दही, प्याज, लहसुन, रक इत्यादि का समावेश अवश्य हो । आहार में ामिन "सी" की कमी से क्षतिग्रस्त धमनियों के मरम्मत गति धीमी पड़ जाती है । इन्हीं बीमार और कमजोर नों पर कोलेस्टेराल का जमना प्रारम्भ हो जाता है जो बाद कोरोनरी एथेरोस्क्लीरोसिस" का कारण बनता है । यदि ही समय तक आहार में विटामिन "सी" की न्यूनता बनी तो यकृत में भी कोलेस्टेराल जमने लगता है । इन तियों पर काबू पाने के लिए हमें अपने आहार में ामिन "सी" बहुल रसदार सिट्रस फलों (नीबू कुल) का ात मात्रा में समावेश करना चाहिए ताकि ऊतको में ामिन "सी" की मात्रा बराबर बनी रहे ।

मांसाहारियों में हृदय की बीमारियां अधिक होती । हाल ही में हुए कुछ शोधकार्यों से यह पता चला है कि ली के तेल में रक्त कोलेस्टेराल के स्तर को नियंत्रित करने क्षमता होती है; इसलिए मांसाहारी व्यक्तियों को अपने ार में मछली के तेल (शारडीन आयल) का उपयोग श्य करना चाहिए । शाकाहार में कोलेस्टेराल की मात्रा कम होती है तथा रेशों की मात्रा अधिक होती है, इस कारण शाकाहारी लोगों को हृदय रोग कम होता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए यदि मांसाहार का उपयोग कम कर दिया जाए तो हृदय की बीमारियों पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है ।

हमारा व्यवहार, मानसिकता और हृदय के रोग :

जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण हमें हृदय रोगों की चपेट में ला सकता है और दूसरी ओर उनसे बचा भी सकता है । कुछ लोग भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं । ऐसा करते समय वे जीवन में हर तरह का समझौता तथा जोड़ तोड़ करने लगते हैं । ये तथाकथित "ए" प्रकार के व्यक्तित्व वाले लोग हमेशा जल्दी में रहते हैं और इसी कारण तनाव में भी । किसी भी तनाव की चपेट में आते ही हमारा स्वतंत्र (आटोनोमिक) तंत्रिका तंत्र सक्रिय हो जाता है और शरीर में कई प्रकार की जीव रासायनिक क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं जिसके फलस्वरुप हमारा संपूर्ण शरीर प्रभावित होता है । यदि तनाव कुछ दिनों के लिए हो तो उसे हमारा शरीर झेल लेता है परन्तु अधिक दिनों तक तनाव ग्रस्त रहने पर हमारा व्यवहार भी प्रभावित होने लगता है और हम चिड़चिड़े बन जाते हैं । जहां कुछ लोग तनाव से बचने के लिए धूम्रपान का सहारा लेते हैं, वहीं अन्य लोग मदिरापान की लत से नाता जोड़ लेते हैं । धूमपान और मदिरापान दोनों का हमारे शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है । वैज्ञानिकों ने यह देखा है कि मदिरापान करने वाले लोगों के जिगर में बहुत कम सघनता वाले (V. L. D. L.) लाइपोप्रोटीन का निर्माण होने लगता है । यह स्थिति उन लोगों में अधिक देखी जाती है जिनके रुधिर में ट्राइग्लिसराइडों का स्तर काफी अधिक होता है । ऐसे व्यक्तियों द्वारा कम मात्रा में किया गया मदिरापान भी उन्हें अति ट्राईग्लिसराइड रक्तता की चपेट में ढ़केलता है । अति कोलेस्टेराल रक्तता से पीड़ित व्यक्तियों के मदिरापान की लत से छुटकारा दिलाने पर यह देखा गया कि उनके रक्त में ट्राईग्लिसराइडों का स्तर तेजी से सामान्य होने लगता है ।

निष्क्रिय जीवन व्यतीत करने वाले लोगों का शरीर स्थूल हो जाता है जबकि सक्रिय जीवन बिताने वाले लोग

(शेष भाग पृष्ठ 40 पर)

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

रेडिओधर्मी खनिज और भूवैज्ञानिक काल-निर्धारण

डा. विजय कुमार उपाध्याय
प्राध्यापक, भूगर्भ
इंजिनियरी कॉलेज, भागलपुर - 81321

प्रकृति में उपलब्ध सभी रेडियोधर्मी तत्व एक विशेष गति से दूसरे तत्व में विखंडित होते रहते हैं । विखंडन की यह गति वातावरण के सभी घटकों से अप्रभावित रहती है चाहे वह पृथ्वी के भीतर का विषम वातावरण ही क्यों न हो । इस लेख में रेडियोधर्मिता के इस विशिष्ट गुण को भूवैज्ञानिकों द्वारा काल निर्धारण हेतु प्रयुक्त किए जाने से सम्बन्धित विविध पहलुओं पर चर्चा की गयी है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में एक ऐसा वैज्ञानिक आविष्कार हुआ जिसने खनिजों एवं अन्य पदार्थों के आयु निर्धारण के लिए एक नया मार्ग खोल दिया । सन् 1896 ई. में ऐंटोनी बेकरेल नामक एक फ्रांसीसी भौतिकीविद ने पता लगाया कि कुछ प्राकृतिक अयस्कों के घटक एक प्रकार की अदृश्य ऊर्जा किरणों को उत्सर्जित करने में समर्थ हैं । ये किरणें फोटोग्राफिक प्लेट को प्रभावित कर सकती हैं, तथा ये ऐसे पदार्थों से भी होकर गुजर सकती हैं जो प्रकाश किरणों के लिये अपारदर्शक हैं । क्यूरी, मेरी तथा पियरे जैसे वैज्ञानिकों ने यूरेनियम के अयस्क से ऊर्जा उत्पादन तत्वों को पृथक किया तथा उन्होंने सन् 1899 ई. में रेडियम नामक तत्व के अविष्कार की घोषणा की । वैज्ञानिकों ने इस प्रकार स्वतः स्फूर्त (स्पौंटेनियस) ढंग से अदृश्य ऊर्जा किरणों के उत्सर्जन की प्रक्रिया का नाम रेडियोधर्मिता (रेडियो ऐक्टीविटी) रखा, तथा जिन पदार्थों से ये किरणें उत्सर्जित होती हैं उन्हे रेडियोधर्मी कहा गया । रेडियोधर्मिता के कारण कुछ अस्थिर पदार्थों के परमाण्विक (ऐटोमिक) नाभिकों का विखण्डन होता है ।

रेडियोधर्मिता के कारण किसी मूल तत्व का विखंडन होकर एक दूसरे नये तत्व का निर्माण होता है । रेडियोधर्मिता में किसी तत्व के नाभिक से तीन प्रकार की किरणों का उत्सर्जन होता है । ये है - अल्फा किरणें, बीटा किरणें तथा गामा किरणें । अल्फा किरणें तो हीलियम तत्व के नाभिक हैं, बीटा किरणें इलेक्ट्रॉन हैं तथा गामा किरणें प्रकाश किरणों की भाँति विद्युत-चुम्बकीय विकिरण हैं, हालांकि ये विद्युत चुम्बकीय विकिरण बहुत छोटे तरंग दैर्ध वाले होते हैं । इन विकिरणों का पता लगाने के लि गाइगर काउंटर नामक तथा अन्य इसी प्रकार के उपकरणों व उपयोग किया जाता है ।

प्रकृति में कई रेडियोधर्मी समस्थानिक खो निकाले गये हैं तथा कई रेडियोधर्मी समस्थानिक प्रयोगशाल में निर्मित किये जा चुके हैं । किसी भी रेडियोधर्मी तत्व व विखंडन उस के निर्माण के क्षण से ही प्रारम्भ हो जाता है औ वह एक निश्चित दर से एक दूसरे तत्व में परिवर्तित होता रह है ।

किसी एक रेडियोधर्मी तत्व के किसी ए समस्थानिक के परमाणुओं की संख्या जितने समय मे उसक प्रारंभिक संख्या की आधी रह जाती है उसे इस तत्व के उ समस्थानिक का अर्धजीवन काल कहते हैं । यह एक सेकिं के सूक्ष्म अंश से ले कर अरबों वर्ष तक हो सकता है ।

इन सभी पदार्थों को अपनी निश्चित रेडियोधर्मिता वे कारण काल मापी के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है बहुत से ऐसे तत्व, जिनका अर्द्धजीवन काल बहुत कम है आज विश्व में नगण्य मात्रा में उपस्थित हैं जबकि प्रारम्भ मे उनकी प्रचुरता काफी थी । परंतु वैसे तत्व जिनक अर्द्धजीवन काल काफी अधिक है. विश्व में पर्याप्त प्रचुरत बनाये हुए हैं । हाल मे वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगशाला में कई कृत्रिम रेडियोधर्मी तत्व निर्मित किये गये है जिनक अर्द्धजीवन काल काफी कम है । कुछ ऐसे रेडियोधर्मी तत्व है जिनका निर्माण ब्रंह्माण्ड किरणों द्वारा वायुमण्डल में हो रह

। रेडियोधर्मी विखंडन की दर बाह्य घटकों जैसे अत्यन्त च एवं निम्न ताप से प्रभावित नही होती है । भू वैज्ञानिकों लिए रेडियोधर्मी तत्वों का यह गुण अत्यन्त महत्वपूर्ण । क्यों कि चाहे पृथ्वी के भीतर जो भी स्थिति क्यों न रही विखंडन एक निश्चित दर से चलता रहता है । भूवैज्ञानिकों लिये रेडियोधर्मिता से संबंधित दूसरा सबसे महत्वपूर्ण य यह है कि इसके कारण ताप उत्पन्न होता है जो पृथ्वी में ड़ पैमाने पर कई प्रकार की हलचलों को उत्पन्न करने में र्थ है । इन हलचलों में शामिल हैं - भूकम्प, ज्वालामुखी, ाद्वीपों का विचरण तथा विस्थापन आदि ।

रेडियोधर्मी पदार्थों का आयु-निर्धारण मूल या पैतृक ार्थ तथा उससे उत्पन्न पदार्थ के अनुपात के सही माप पर र्भर करता है । मोटे तौर पर इसकी तुलना बालू घड़ी से की सकती है । जिससे समय का अनुमान इस आधार पर ाया जाता था कि एक कम्पार्टमेंट से दूसरे कम्पार्टमेंट में तनी बालू का स्थानान्तरण होता है । यदि बालू के ानान्तरण की दर (रेडियोधर्मी पदार्थों में विखंडन की दर) लूम हो तो बालू के स्थानान्तरित एवं अस्थानान्तरित अंशों अनुपात को जानकर यह ठीक-ठीक बताया जा सकता है बालू घड़ी कितने समय से काम कर रही है । हाँ, इसमें ; शर्त अवश्य है कि इस बालू घड़ी के किसी भी पार्टमेंट में बालू न तो बाहर से मिलाया गया हो और न से बाहर निकाला गया हो । यदि बालू घड़ी की दीवार में र हो तथा कुछ बालू उससे बाहर निकल रहा हो तो बालू ी सही समय बताने में असमर्थ रहेगी । प्रकृति में स्थित सी रासायनिक संहति में बाहर से कोई योग अथवा इसके सी घटक के बाहर निकलने से काल-निर्धारण में अशुद्धि ी । उदाहरणार्थ कुछ रेडियोधर्मी पदार्थों से उत्पन्न घटक ीय अवस्था में रहते हैं तथा ताप या दाब के प्रभाव में कर सूक्ष्म छिद्रों अथवा दरारों से बाहर निकल सकते हैं । ल-निर्धारण करते समय भूवैज्ञानिकों को सावधानीपूर्वक देखना पड़ता है कि लिया गया नमूना अपक्षय से ाभावित हो तथा उसमें किसी प्रकार की दरार उपस्थित ा हो ।

रेडियोधर्मी परिवर्तन जो प्रायः काल-निर्धारण में योग में लाये जाते हैं उनमें शामिल हैं - यूरेनियम से लेड, थोरियम से लेड, रूबीडियम से स्ट्रांशियम, पोटाशियम से आर्गन, कार्बन-14 से नाइट्रोजन आदि ।

यूरेनियम तथा थोरियम से काल-निर्धारण :

रेडियोधर्मी तत्वों में यूरेनियम सर्व प्रमुख है, तथा इसके अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया गया है, क्यों कि यह तत्व नाभिकीय संयंत्रों में उपयोग में आनेवाला मुख्य ईंधन है । यह रेडियम का जनक है तथा परमाणु बम में उपयोग में लाया जाता है । प्रकृति में यूरेनियम के दो समस्थानिक मिलते हैं । ये दो समस्थानिक हैं - यूरेनियम - 235, तथा यूरेनियम - 238, तथा ये दोनो समस्थानिक प्रकृति में साथ-साथ मिलते है । परन्तु यूरेनियम - 238, यूरेनियम - 235 की अपेक्षा 140 गुना अधिक प्रचुरता में उपलब्ध है । यूरेनियम अयस्कों के साथ रेडियोधर्मी थोरियम - 232 भी मिलता है । यह इस तत्व का एकमात्र समस्थानिक है । ये तीनों समस्थानिक विखंडन द्वारा कई मध्यवर्ती तत्वों को जन्म देते हुए अन्ततः लेड में परिवर्तित होते हैं ।

यूरेनियम-235 के विखंडन के कारण अन्तिम उत्पाद के रूप मे लेड-207 उत्पन्न होता है । यूरेनियम-235 का अर्द्ध जीवन काल 71.3 करोड़ वर्ष है । यूरेनियम-238 के विखंडन से अन्त उत्पाद के रूप में लेड-206 प्राप्त होता है । यूरेनियम-238 का अर्द्धजीवन काल 4.5 अरब वर्ष है । थोरियम-232 के विखंडन के कारण अन्त उत्पाद के रूप में लेड-208 प्राप्त होता है । थोरियम-232 का अर्द्ध जीवन काल 13.9 अरब वर्ष है । इन तीनों तत्वों के विखंडन से हीलियम गैस उप उत्पाद के रूप में प्राप्त होती है । प्रारम्भ में यूरेनियम लेड डेटिंग विधि का उपयोग करने के लिये यह आवश्यक है कि किसी शैल नमूने में अविखंडित यूरेनियम की मात्रा तथा विखंडन द्वारा उत्पन्न लेड की मात्रा का अनुपात मालूम किया जाये । इस विधि में यह मान लिया जाता है कि विखंडन के प्रारंभ में लेड की कोई मात्रा उपस्थित नही थी । हालांकि इस मान्यता में अनिश्चितता की सम्भावना है । ऐसा पाया गया है कि जिरकन नामक खनिज में प्रायः यूरेनियम की कुछ मात्रा उपस्थित रहती है । जिरकन की रवा-संरचना में यूरेनियम के परमाणु घुस जाते हैं, जबकि लेड के परमाणु जिरकन की रवा-संरचना में नही घुस सकते क्यों कि लेड परमाणुओं का आकार बड़ा है । अतः जिरकन

के रवों में यदि लेड की कोई मात्रा उपस्थित पायी जाती है तो यह निश्चित है कि यह रेडियोधर्मी यूरेनियम के विखंडन से प्राप्त लेड ही है, तथा यह आयुगणना के लिये ठोस आधार प्रस्तुत करता है । प्रारंभ में लेड की कितनी मात्रा उपस्थित थी इसका संकेत लेड के एक दूसरे समस्थानिक लेड-204 की उपस्थित मात्रा से भी मिलता है । यह लेड रेडियोधर्मिता के कारण उत्पन्न नही होता है । इस समस्थानिक की मात्रा से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस समय नमूने का निर्माण हुआ उस समय लेड-206 तथा लेड-207 की कितनी मात्रा उपस्थित रही होगी । इस महत्वपूर्ण सम्बन्ध के विषय में उपयोगी सूत्र धात्विक उल्काओं में भी मिलता है । इन उल्काओं में यूरेनियम नगण्य मात्रा में रहता है तथा इनमें उपस्थित कोई भी लेड की मात्रा उन ब्रह्माण्ड कणों से प्राप्त हुई होगी जिन कणों से ग्रहों का निर्माण हुआ । ऐसा माना जाता है कि उल्काओं का निर्माण उसी काल में हुआ जिस काल में पृथ्वी बनी । अतः पृथ्वी में लेड समस्थानिकों का अनुपात वही होना चाहिए जो अनुपात उल्काओं में मिलता है । विश्लेषणों से पता चला है कि पृथ्वी के मिश्रित नमूनों में लेड-206 तथा लेड-207 की मात्रा धात्विक उल्काओं में उपस्थित उपर्युक्त तत्वों की मात्रा की तुलना में लगभग दुगुनी है । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पृथ्वी में उपस्थित लेड की कितनी मात्रा रेडियोधर्मी तत्वों के विखंडन से उत्पन्न हुई है ।

यदि हम यह मान कर चलें कि प्रारंभ में जनक पदार्थ की कोई खास मात्रा पृथ्वी में उपस्थित थी जिसका धीरे-धीरे विखंडन हुआ तो लेड-206 तथा लेड-207 के अनुपात को आयु-निर्धारण के लिये उपयोग में लाया जा सकता है । इस विधि को लेड-लेड विधि कहते हैं ।

पोटाशियम-आर्गन विधि :

काल-निर्धारण के लिये पोटाशियम-आर्गन विधि की खोज सन् 1948 में की गयी । पोटाशियम-40 विखंडन द्वारा या तो कैल्शियम-40 को उत्पन्न करता है अथवा आर्गन-40 को । लगभग 89% पोटाशियम-40 बीटा कण के उत्सर्जन द्वारा अपने नाभिक में स्थित एक न्यूट्रॉन को एक प्रोटॉन में बदल देता है जिसके कारण पोटाशियम-40 के विखंडन से कैल्शियम-40 का निर्माण होता है । पोटाशियम-40 का लगभग 11% भाग अपने नाभिक के बाहर चारों ओर स्थित इलेक्ट्रान के परिपथ से एक इलेक्ट्रान के ग्रहण द्वारा एक प्रोटॉन को एक न्यूट्रॉन में बदल देता है जिससे आर्गन-40 का निर्माण होता है । पोटाशियम-40 का अर्द्धजीवन काल 1.31 अरब वर्ष है । इस विधि के उपयोग में यह आवश्यक है कि किसी खनिज नमूने में उपस्थित पोटाशियम तथा आर्गन दोनों की मात्रा किसी नाजुक विश्लेषण यंत्र द्वारा सही-सही मापी जाये । इस विधि के उपयोग में यह मान लिया जाता है कि नमूने के जीवनकाल में पोटाशियम तथा आर्गन की कोई मात्रा न तो बाहर से मिलाई गयी और न नमूने से बाहर निकाली गयी । यह भी मान लिया जाता है कि प्रारम्भ में आर्गन की कोई मात्रा उपस्थित नही थी ।

पोटाशियम आर्गन विधि का महत्व इस कारणवश भी है कि इसके द्वारा अनेक खनिजों बायोटाइट, मस्कोवाइट सैनीडीन, हौर्नब्लेंड, ग्लौकोनाइट, पाइरोक्सीन तथा कुछ ज्वालामुखीय शैलों की आयु का निर्धारण किया जा सकता है । अभ्रक लगभग सभी आग्नेय तथा परिवर्तित (मेटोमोर्फिक) चट्टानों में पाया जाता है । चूँकि ज्वालामुखीय राख अवसादी शैलों के साथ भी मिली रहती है । अतः परोक्ष रूप से इसकी आयु भी निर्धारित की जा सकती है । आजकल आयु-निर्धारण के लिये अभ्रक तथा हौर्नब्लेंड का उपयोग किया जाता है ।

रुबीडियम-स्ट्रॉंशियम विधि :

रुबीडियम-87 प्रकृति में मिलने वाला एक रेडियोधर्मी समस्थानिक है जिसके विखंडन से एक बीटा कण मुक्त होता है तथा स्ट्रांशियम-87 का निर्माण होता है । इसका अर्द्धजीवन काल 47 अरब वर्ष है । लम्बे अर्द्धजीवन काल के कारण इस विधि का उपयोग काफी प्राचीन चट्टानों के निर्माण काल के निर्धारण के लिये किया जाता है ।

इस विधि द्वारा जिन खनिजों का काल -निर्धारण किया जाता है उनमें शामिल है - मस्कोवाइट, बायोटाइट लिपिडोलाइट, माइक्रोक्लीन तथा ग्लौकोनाइट । इनके अतिरिक्त कुछ आनेय तथा परिवर्तित शैलों का भी आयु-निर्धारण किया जाता है । इस विधि द्वारा प्रायः उन शैलों का आयु-निर्धारण किया जाता है जो इतने महीन कणों

बने होते हैं कि उनके अलग-अलग खनिजों को पृथक रना असम्भव सा है । ऐसे शैल नमूनों को महीन पीसा ाता है, अच्छी तरह मिलाया जाता है तथा उनका इस प्रकार श्लेषण किया जाता है मानो वे एक खनिज हो ।

अधिकांश परिस्थितियों में इस विधि द्वारा निर्धारित ायु, यूरेनियम-लेड विधि या पोटाशियम-आर्गन विधि द्वारा र्धारित आयु से अधिक सही होती है । इसकी वजह यह है ; रुबीडियम-87 के विखंडन से प्राप्त अंतिम उत्पाद ॅशियम-87 एक ठोस पदार्थ है जो अपने निर्माण की गह पर रहता है । इसके विपरीत दूसरे रेडियोधर्मी तत्वों के खंडन के कारण कुछ गैसों का भी उत्पादन होता है, जो मूने से प्रायः बाहर भाग जाते हैं ।

र्बन-14 विधि :

रेडियो समस्थानिकों द्वारा काल-निर्धारण की धियों में सर्वप्रमुख तथा लोकप्रिय विधि कार्बन-14 विधि । इस विधि द्वारा हाल मे निर्मित जीवाश्मों तथा ातात्विक अवशेषों का काल-निर्धारण किया जाता है । र्बन-14 का निर्माण वायुमंडल में लगातार नाइट्रोजन पर ह्मांड किरण की बौछार के कारण हो रहा है । इस प्रकार र्मित रेडियोधर्मी कार्बन वायुमण्डल के ऑक्सिजन के साथ लकर कार्बनडाइआक्साइड का निर्माण करता है । इस कार निर्मित कार्बनडाइआक्साइड सभी प्रकार के र्बनिक यौगिकों में सम्मिलित हो जाता है । कार्बन-14 वित पदार्थों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है । इसकी खंडन-संख्या को विकिरण गणकों (रेडियेशन काउंटर) रा मापा जा सकता है । जब तक कोई जीवधारी जीवित ता है उसमें रेडियोधर्मी कार्बन-14 तथा अधिक प्रचुरता ले कार्बन-12 के बीच साम्य बना रहता है । जैसे-जैसे ाना कार्बन-14 लुप्त होता जाता है, नये कार्बन-14 का र्माण होता जाता है । जब कोई जीवधारी मरता है तो उसमें हर से कार्बन-14 की मात्रा नही शामिल होती है । इस रिस्थिति में जीवधारी के मृत शरीर में उपस्थित कार्बन-14 टा कणों को उत्सर्जित कर धीरे-धीरे विखंडित होने लगता और अन्ततः नाइट्रोजन में परिवर्तित हो जाता है । र्बन-14 का अर्द्धजीवन काल लगभग 5730 वर्ष है । सी कार्बनिक पदार्थ में कार्बन-14 की मात्रा विखंडन संख्याओं को गिनकर तथा जीवित ऊतकों में कार्बन-14 की मात्रा की तुलना कर निर्धारित की जाती है । विश्वसनीय आँकडों के लिये लगभग 10,000 विखंडनों को डेढ घंटे से 15 घंटों के बीच गिनने की आवश्यकता होती है । इस जाँच के लिये नमूने की काफी मात्रा लेनी पड़ती है । यह प्रक्रिया काफी समय लेती है तथा इसके द्वारा 50 हजार वर्ष से अधिक पुराने नमूने की आयु निर्धारित नही की जा सकती है । * * *

(पृष्ठ 25 का शेष भाग)

सल्फर आकलन बाम्बविधि द्वारा 6 घन्टो में, विक वोल्ड विधि द्वारा 2 घंन्टे में, एवं रैने निकिल विधि द्वारा 3 घंटों में किया जाता था ।

छलमय आसवन उपकरण :

ये संयन्त्र गैसवर्णीय चित्रक विधि पर आधारित है । इस आधुनिक संयन्त्र द्वारा खनिज तेल अथवा उत्पादों की मात्रा 2 माइक्रोलीटर मात्रा लेकर हम ज्ञात कर लेते हैं कि किस तापक्रम पर किन उत्पादों की प्रतिशत मात्रा कितनी प्राप्त हो सकती है । यह उपकरण (मॉडल 5880 ए) ह्यूलैट पैकर्ड कंपनी द्वारा तैयार किया जाता है ।

इस प्रकार आधुनिक संयन्त्रों की सहायता से खनिज तेल का उच्च कोटि का मूल्यांकन करने में हम सक्षम हो गये हैं । इससे हमें उपभोक्ताओं एंव औद्योगिक इकाईयों तक निर्दिष्ट गुणों वाले पेट्रोलियम उत्पाद पहुंचाने में भरपूर सहायता मिलती है । * * *

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है की यदि उनका "वैज्ञानिक" का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें । "वैज्ञानिक" के लिफाफे पर शुल्क सम्बन्धी जानकारी दी जाती है । यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएँ ।

— **सम्पादक**

अखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

संगणक की अत्याधुनिक कार्य प्रणाली : यूनिक्स

- अशोक ल. खांडवे
संगणक प्रभाग, भाभा प. अ. केंद्र
बम्बई - 400 085.

संगणक एक ऐसा यंत्र है जिसकी कार्यक्षमता उसके उपयोगकर्ता की सूझबूझ पर निर्भर करती है । इसके लिए संगणक में प्रयुक्त किसी भाषा में विभिन्न आदेशों एवं सूचनाओं की क्रमबद्ध सूची उपयोगकर्त्ता को ही देनी होती है । इस लेख में संगणकों की प्रचिलित भाषा एवं उसकी कार्यप्रणाली के साथ साथ अत्याधुनिक "यूनिक्स" कार्यप्रणाली की भी जानकारी दी गयी है ।

संगणक एक ऐसा यंत्र है जिसका कार्य निर्धारण उसके उपयोगकर्ता को ही करना पड़ता है । इसके लिये उपयोगकर्त्ता को विभिन्न आदेशों एवं सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप में देने पर संगणक उन सूचनाओं पर प्रक्रिया करता है । यद्यपि मनुष्य की अनेक भाषायें हैं किन्तु संगणक की भाषा सिर्फ एक ही है जिसे उस की मूल भाषा (मशीन भाषा) कहा जाता है । अतः किसी भी भाषा में लिखा गया कार्यक्रम अथवा आदेशों का समूह, संगणक की मूल भाषा में परिवर्तित करना आवश्यक है ।

यदि हम संगणक के द्वारा कराए जाने वाले हर कार्यक्रम को उसकी मूलभाषा में ही लिखें तो यह कार्य अत्याधिक कष्टप्रद होगा एवं अधिक समय लेगा । इसलिये मूलभाषा के शब्दों का संगठन कर नवीन आदेशों का निर्माण किया गया जिसे असेंब्ली - भाषा के नाम से जाना जाता है लेकिन यह भाषा केवल उसी संगणक के लिये उपयोगी होती है, जिसके लिए इसका निर्माण किया गया है । कुछ संगणकों में विशेष कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की जाती है, जिसके उपयोग से दूसरे संगणकों की असेंब्ली भाषा का उपयोग भी इन संगणकों के लिये किया जा सकता है । यह विशेष कार्यक्रम क्रॉस असेंब्लर के नाम से जाना जाता है । लेकिन इस भाषा में कार्य करना भी उकता देने वाली बात है । इसलिये इन भाषाओं से भी ऊँचे स्तर की भाषाओं का विकास किया गया जिन्हें संगणकों की उच्चस्तरीय भाषाएँ "(हाईयर लेंग्वेजेस्)" के नाम से जाना जाता है ।

इन भाषाओं में विकसित कार्यक्रमों को मूलभाषा में बदलने के लिये एक अलग कार्यक्रमों का संच होता है जिसे कम्पाइलर कहते है । प्रत्येक उच्च स्तरीय भाषा का अपना कम्पाइलर होता है जिसका कार्य उस भाषा में लिखे गये कार्यक्रमों को शीघ्रता से संगणक की मूलभाषा में अनुवाद करना होता है । अब तक हम उपयोगकर्ता द्वारा अपनाई जाने वाली भाषा के बारे में बात कर चुके हैं । किन्तु संगणक को कार्य करने के लिये (जैसे सूचनाओं को एकत्रित करना, उनका लेखा - जोखा रखना, निर्धारित कार्य क्रमशः करना, उपयोगकर्ता द्वारा जानकारी तथा सूचनाएँ निर्धारित जगहों में संजोए रखना, दृश्यपटल पर उनको अंकित करना, आवश्यकतानुसार छपाई-यंत्र द्वारा कागज़ पर प्रतियाँ प्राप्त करना आदि) एक प्रकार की पूर्व नियोजित आज्ञावली का होना आवश्यक है । सभी निजी या लघु संगणकों में इसे मोनीटर प्रोग्राम कहा जाना जाता है ।

संगणकों के उपयोग के लिए अनेक उच्चस्तरीय भाषाएँ जैसे बेसिक, फोर्ट्रान, पासकल, कोबोल, सी, अडा इत्यादि विकसित की जा चुकी हैं और उनमें निरंतर संशोधन एवं विकास भी किया जा रहा है । ये भाषाएँ हम लोगों के लिए तो सरल हैं लेकिन संगणक के लिए कठिन है । यही कारण है कि इन्हें उच्चस्तरीय भाषाओं के नाम से जाता है । यह संबोधन संगणक के लिये है, हमारे लिये नहीं । हमारे लिये तो इसकी सरलता ही इसके संशोधन तथा विकास का मूल उद्देश्य है ।

इसी तरह विस्तृत कार्यक्षमता वाली अनेक र्यप्रणालियाँ संगणक हेतु विकसित की जा चुकी हैं जिनमें . पी. एम. (कंट्रोल प्रोग्राम फॉर माइक्रो कंप्यूटर्स), एम. एस. स (माइक्रो सॉफ्ट डिस्क ऑपरेटिंग सिस्टम), एम. पी. एम. नेजमेंट प्रोग्राम फॉर माइक्रो कम्प्यूटर्स) इत्यादि प्रमुख हैं । त्याधुनिक संगणक - प्रणाली यूनिक्स (संक्षिप्त विवरण में नेक्स) का विवरण निम्नलिखित है ।

यूनिक्स :- इसका विकास सर्वप्रथम बेल ोगशाला के केन थॉमसन ने सन् 1969 में किया । ावसायिक - जग में यूनिक्स के अनेक फायदें हैं; 1) यह नेक उपभोक्ता योग्य प्रणाली है, 2) विविध - कार्य योग्य ाली है, 3) किसी भी हार्डवेअर पर चलाई जा सकती है, इसमें शक्तिशाली संचार क्षमता निहित है, 5) शक्तिशाली ब्रांकन (ग्राफिक) क्षमताएँ उपलब्ध हैं, 6) इसके साथ योग योग्य अनेक उपकरण तथा सुविधाएं उपलब्ध हैं ।

यह प्रणाली अनेक उपभोक्ताओं को एक साथ कार्य ने के लिए उपयुक्त है । प्रत्येक उपभोक्ता को अन्य भोक्ताओं की कार्यविधियों से सुरक्षा एवं निश्चितता प्रदान जाती है तथा संगणक - प्रणाली के सूचना - संचय तथा क्रम (प्रोसेसिंग) शक्ति के प्रभावशाली आदान - प्रदान को भव बनाती है । यदि उपभोक्ताओं की संख्या अधिक हो तो ्रीय - प्रकम - इकाई (सी. पी. यू.) पर अधिक भार पडता । फलस्वरूप संगणक में निहित हार्डवेअर उपभोक्ताओं संख्या सीमित करता है ।

उपभोक्ता अनेक कार्य एक साथ भी कर सकते हैं ये एक उपभोक्ता संकलक (एडीटर) का उपयोग गद्य को ग्रावत करने में कर रहा होता है जबकि अन्य उपभोक्ता ाका उपयोग अपने कार्य के लिए करता है । यूनिक्स ाली पर साधारणतः करीब बीस से पच्चीस क्रियाएँ साथ थ की जा सकती हैं । कुछ आदेशों तथा फलनों के लिए उभूमि - प्रक्रम - क्रिया (बैकग्राऊण्ड प्रोसेसिंग) भी संभव । प्रत्येक कार्य के लिये अग्रक्रमों का निर्धारण भी कर कते हैं ।

संपूर्ण यूनिक्स क्रिया-प्रणाली विश्वमान्य सी भाषा में खी गई है । भारतीय संगणक - जगत में इसका बखूबी ार्भाव किया जा चुका है । जीवन के सभी क्षेत्रों में संगणकों के उपयोग ने स्वयंचलितता के प्रवेश की घोषणा की है । शुरु में संगणक बड़े, वजनी एवं अतिकीमती यंत्र थे । परन्तु निजी - संगणकों के प्रवेश से उनके आकार एवं कीमतों में बहुत गिरावट आई जिसमे अधिक से अधिक लोगों ने निजी - संगणकों का उपयोग आरंभ किया है । घरेलू महिलाओं ने भी उनके दैनिक जमा-खर्च एवं अन्य बातों के लिये उन्का उपयोग करना आरंभ किया है ।

ये मेज-सतह संगणक तकनीकी में प्रगति करके अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाए गए है । इन्टेल 386 सी. पी. यू. की खोज से लघु - संगणकों को मेज - सतह यंत्रों का स्वरुप आया । साथ ही साथ चूँकि सामग्री संचयन की कीमतों में भी गिरावट आई है । अतः इन यंत्रों की संचयन क्षमता काफी बढाई गयी है ।

जैसे जैसे इन यंत्रों की क्षमता में विकास होता गया वैसे वैसे इन यंत्रों के चालन परिस्थितियों को बेहतर बनाना आवश्यक महसूस होने लगा । इन निजी संगणकों का उपयोग बढाने हेतु एवं इनके मैत्रीपूर्ण उपयोग के लिये सॉफ्टवेअर उन्नत करना आवश्यक हो गया । माइक्रोसॉफ्ट कंपनी द्वारा विकसित एम. एस. डॉस. क्रिया-प्रणाली जोकि निजी - संगणकों द्वारा अधिकाधिक उपयोग में लाई गयी है, 386 सी. पी. यू. आधारित निजी-संगणक (AT) की कार्य - क्षमताओं से होड़ न कर सकी । अतः अन्य पर्याय अति आवश्यक था क्योंकि इन निजी - संगणकों की लोकप्रियता संपूर्ण विश्व में बढ़ रही है ।

एटी. तथा टी. बेल प्रयोगशाला में विकसित यूनिक्स एक अतिशक्तिशाली परिचालन (क्रिया) - प्रणाली है जिसने प्रगत लघु - संगणकों तथा मुख्य संगणकों में उपयोगी हार्डवेअर तथा सॉफ्टवेअर को काफ़ी समीप लाया । भारत में एच. सी. एल. (हिंदुस्तान कम्प्यूटर्स लिमिटेड) तथा विप्रो प्रसिद्ध व्यापारी हैं जो यूनिक्स परिचालन प्रणाली उपभोक्ताओं को उपलब्ध करा रही हैं ।

संगणक का उपयोग आज के जीवन के हर क्षेत्र में किया जा सकता है । इसके उपयोग का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं विविधांगी है जिसकी संपूर्ण चर्चा करना असंभव सा है । अनेक वर्षों तक संगणक का उपयोग एक समय में एक ही उपयोगकर्ता द्वारा होता रहा है । लेकिन विगत कुछ वर्षों

में ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया गया जिसमें एक जगह विशाल संचय क्षमतावाला, बहुकर्णी, अनेक सुविधाओं से युक्त शक्तिशाली मुख्य संगणक होता है जिसका उपयोग विविध क्षेत्रों में कार्यरत उपयोगकर्ता एक साथ कर सकें । हाँलाकि संगणक एक समय में एक ही कार्य करता है किन्तु प्रत्येक उपयोगकर्ता को थोड़ा समय दिया जाता है । यह समय इतना कम होता है तथा संगणक इतनी शीघ्रता से कार्य करता है कि प्रत्येक उपयोगकर्ता को ऐसा प्रतीत होता है मानों संगणक उसी का कार्य करता है । संगणक की यह प्रक्रिया अनेक बार दोहराई जाती है ।

यह व्यवस्था या श्रृंखला "लोकल एरिया नेटवर्क (LAN)" के नाम से जानी जाती है । लान द्वारा मुख्य संगणक का उपयोग 0.1 से 10 कि. मी. क्षेत्र के अन्तर्गत किया जा सकता है ।

यह श्रृंखला दो तरीकों से की जाती है; 1) बस मोड एवं 2) रिंग मोड । बस मोड में अनेक छोटे संगणक तथा संबंधित सहायक उपकरण एक रेल से जिसके दोनों सिरे खुले होते हैं, जोड़ दिये जाते हैं । इस संपर्क व्यवस्था में प्रत्येक उपकरण को अन्य उपकरणों से सुरक्षित रखा जाता है । लान की इस व्यवस्था को "ईथरनेट" कहा जाता है ।

रिंग मोड में छोटे संगणक तथा अनेक संबंधित उपकरण गोलाकार रेल से जोड़े जाते हैं । इस गोलाकार के मध्य में मुख्य संगणक होता है । इस व्यवस्था में एक विशिष्ट आंकडा संकेत के स्वरुप गोलाकार रेल पर भेजा जाता है । यह संकेत प्रत्येक लघु - संगणक से होता हुआ आगे बढता है । यदि किसी संगणक को मुख्य संगणक से संपर्क करना हो तो वह संकेत जवाब में मुख्य संगणक को सूचना देता है, और दोनों एक दूसरे से संपर्क स्थापित करते हैं ताकि उपयोगकर्ता मुख्य संगणक का उपयोग अपने कार्य के लिये कर सके । कार्य - समाप्ति के उपरान्त पुनः संकेत इस लघु संगणक से आगे गोलाकर रेल पर भेजा जाता हैं । इस तरह सभी संगणकों को मुख्य संगणक की सेवा उपलब्ध कराई जाती है ।

इस गोलाकार श्रृंखला में यदि एक भी संबंधित लघु संगणक में बाधा हो तो पूर्ण लान-व्यवस्था के कार्य में बाधा

(शेष पृष्ठ 46 पर)

कुछ फूल कुछ कांटे

महोदय,

देखने वाले, अर्थात विचार करने वाले को शास्त्री (वैज्ञानिक) भाषा में दृष्टा कहते हैं । दृष्टा जिस बात का विच करता है उसे दृष्य अथवा ध्येय कहते हैं । दृष्टा ज सामान्यतया विचाररत होता है तो उसे (1) ध्येय वस्तु विचार के साथ-साथ (2) स्वयं अपना (कि मैं ध्यान कर र हूँ) तथा (3) ध्येय एवं स्वयं के आसपास के वातावरण व सापेक्षात्मक विचार भी रहता है । इन तीन प्रकार के विचा वाली सामान्य अवस्था को "ध्यान" कहते हैं ।

अभ्यासपूर्वक ध्यान करनेसे ध्यान बढ़ जाता है ध्यान करते-करते जब ध्यान बढ़ जाता हैं, तो दृष्टा व आसपास के वातावरण का सापेक्ष दृष्य दृष्टिरहित हो जाता अर्थात "शान्त" हो जाता है और दृष्टा को केवल ध्येय ए स्वयं की अनुभूति रहती है । दृष्टा के विचार की इस अवस्थ को धारणा कहते हैं । "शान्ति" प्राप्ति के लिए धारण द्वितीय चरण है । लेकिन यत्नपूर्वक जब धारणा के अभ्यार को और भी अधिक बढ़ाया जाता है, तो दृष्टा को स्वयं क अनुभूति भी शांत हो जाती है और केवल ध्येय की अनुभूि रहती हैं । इस चरण को संयम कहते है ।

जब संयम स्थापित करने के लिए अभ्यासपूर्वव किसी प्रयास की आवश्यकता दृष्टा को महसूस होना बन्द हो जाये, तो उस स्थिति को समाधि कहते है । शास्त्रों वे अनुसार संयम की अवस्था में दृष्टा का चित्त ध्येय के स्वरू का हो जाता है ।अतः संयम द्वारा किसी भी ध्येय वस्तू क प्रत्यक्ष एवं प्रमाणित जानकारी प्राप्त कर सकता है । ज्ञा प्राप्ति का यह सर्वोत्तम सुलभ साधन है ।

ध्यान से संयम की स्थिति प्राप्त करने का समय दो-चार मिनट या दो-चार घंटे की कालबद्धता नहीं है, जैसाकि आपने सम्पादकीय "मानसिक तनाव" (वैज्ञानिक जनवरी-मार्च 1992) में प्रस्तुत किया है । विशेष विवरण के लिए कृपया पतंजलि योगदर्शन अवलोकनीय है ।

भवदीय

सोमनाथ त्यागी

कोट बाजार, अमरोहा (उ.प्र.) 244221

(पतंजलि योगशास्त्र में धारणा, ध्यान और समाधि क्रमशः उत्कृष्ट अवस्थाएं हैं जिन्हें संयुक्त रूपसे संयम कहा गया है - सं.)

खिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ाश्चर्यजनक भारतीय राज केंकड़ा ौर उसका अनोखा व्यवहार

- डा. अनिल चटर्जी, वैज्ञानिक,
राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान,
दोना पाल, गोवा.

करोड़ों वर्ष पूर्व विकसित, प्रकृति के प्रभाव से अनछुआ एक अद्‌भुत केंकड़ा बंगाल और उड़ीसा के तट पर पाया जाता है । इसके रक्त से निष्कर्षित एक यौगिक "लायसेट" का उपयोग जीवाणु परीक्षण में चमत्कारी सिद्ध हुआ है । भारत में भी इस यौगिक के शीघ्र उत्पादन की योजना है जो अभी तक आयातित होता है ।

समुद्र जीव-जन्तुओं का अपार भंडार है तथा पृथ्वी 75% भाग में इसका विस्तार है । पृथ्वी एवं समुद्र में क प्रकार के जन्तुओं का आविर्भाव होता रहा है परन्तु य के साथ-साथ बहुत-सी प्रजातियाँ आकस्मिक रुप से ुप्त भी हो गई हैं । प्रकृति का यह अनोखा नियम पिछले ारों वर्षों से चल रहा है तथा भविष्य में भी चलता रहेगा । श्चर्य की बात है कि विकासक्रम में समय-समय पर अनेक ावों के बावजूद भी एक ऐसा जन्तु जीवित है जिस पर ति का प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ा है । घोड़े की नाल के ार वाला यह अद्‌भुत जीव (चित्र 1) राज केंकड़ा या ॅ-शू क्रैब के नाम से जाना जाता है । समय के साथ लती परिस्थितियों से इस जन्तु ने समझौता नहीं किया : अपने शरीर के आकार तथा स्वरूप को वैसे ही बनाये । जिस रूप में इसका जन्म आज से लगभग 3600 लाख पूर्व मीसोजोइक समुद्र में हुआ था । संसार का यह से प्राचीन जीवित प्राणी है तथा इसीकारण ाश्म-वैज्ञानिक इसे इस युग का आश्चर्यजनक क-जीवाश्म मानते हैं ।

समस्त संसार में इस केंकड़ा की चार प्रजातियाँ पाई ी हैं, परन्तु भारत में इस प्रकार के केंकड़ों की दो प्रजातियाँ मिलती हैं । एक प्रजाति, जो बंगाल के सुन्दरवन प्रदेश के नों में मिलती है - कार्सिनोस्कोइपियस रोटंडीकाओडा के से जानी जाती है । दूसरी प्रजाति का नाम टेकीप्लीयस गस है जो उड़ीसा के तटीय भागों में मिलती है । बंगाल ोग इसे राज केंकड़ा तथा उड़ीसा के लोग रामलेखोनी के से जानते हैं । अन्य केंकड़ों की अपेक्षा इन केंकड़ो में

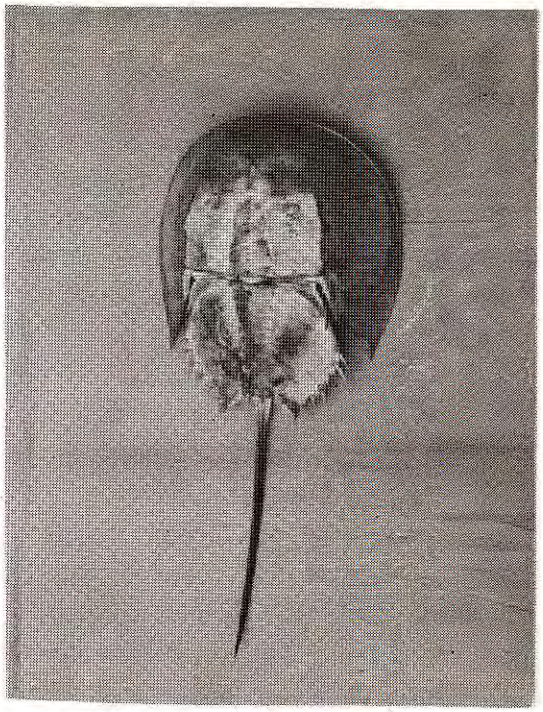

चित्र 1- राज केंकडा या हार्स-शू क्रैब

माँस की मात्रा बहुत कम होती है जिससे यह जन्तु खाने में प्रयोग नहीं होता है ।

सन् 1964 में लेविन और बेंग नामक वैज्ञानिकों ने इस केंकड़े की नीली रक्त-कोशिकाओं से एक उपयोगी यौगिक का निष्कर्षण किया जो किसी भी ग्राम-ऋणात्मक जीवाणु के एंजाइम से शीघ्रता से प्रतिक्रिया करता है । इस अभूतपूर्व संवेदनशील यौगिक को "लायसेट" का नाम दिया

गया । अब तक जीवाणु संबंधी परीक्षणों में खरगोश के रक्त से बने रेबिट वेक्सीन का उपयोग होता रहा है । परन्तु यह यौगिक इतना प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ । इसका मूल कारण यह है कि यह यौगिक उसी समय संवेदनशील होता है जब जीवाणुओं की संख्या अत्याधिक होती है । इस तरह से कोई भी घातक जीवाणु किसी प्राणी के शरीर में प्रवेश करता है तो उसकी पहचान प्रारंभिक अवस्था में रेबिट-वेक्सीन के द्वारा नहीं की जा सकती । हानिकारक जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोग समय पर न मालूम पड़ने से प्राणघाती हो जाता है । ऐसे कई उदाहरण सेप्टीसीमिया जैसी घातक बीमारियों में पाये जाते हैं । रेबिट - वेक्सीन द्वारा जीवाणु परीक्षण में 40-60 घंटों का समय भी लगता है । राज केंकड़ा से प्राप्त लायसेट के आविष्कार ने चिकित्सा विज्ञान को एक नई रोशनी प्रदान की है और अब जीवाणु संबंधी परीक्षण 2-4 घंटे में ही आसानी से परखनली में किये जा सकते हैं । जीवाणु के एंजाइम के सम्पर्क में आते ही लायसेट तुरन्त ही शिलषि की तरह जम जाता है जिससे जीवाणुओं की उपस्थिति का पता चल जाता हैं । जीवाणुओं की मात्रा काफी कम होने के बावजूद भी यह काफी संवेदनशील है तथा इस तरह के परीक्षणों में यह उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में लायसेट का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है । अमरीका जैसे विकसित देश में 95 प्रतिशत पाइरोजन परीक्षण अब लायसेट द्वारा ही किये जाते हैं । औषधि निर्माण विज्ञान में लायसेट का उपयोग अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है । कम समय में किसी भी प्रकार की औषधि जीवाणुरहित है अथवा नहीं - इसका परीक्षण लायसेट द्वारा बड़े प्रभावशाली ढंग से किया जाता है । शैय्या संबंधी परीक्षणों में भी लायसेट का उपयोग होता है । मनुष्य नेत्रों में जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोग, टाइफाइड ज्वर, जनन अंगों में विभिन्न प्रकार के रोग जैसे गोनोरिया आदि के परीक्षणों में लायसेट का उपयोग किया जाने लगा है । खाद्य पदार्थों, जैसे दूध में जीवाणुओं की उपस्थिति इसके द्वारा आसानी से पता की जा सकती है ।

इस केंकड़े के रक्त से "लिमूलस" नामक औषधि भी बनाई जाती है जिसका उपयोग होम्योपैथिक चिकित्सा में होता रहा है । शरीर में होने वाली भयंकर पीड़ा, समुद्र-स्नान के बाद सुस्तीपन, उदर रोग एवं हैजे में भी लिमुलस ए अचूक औषधि का काम करती है ।

भारतीय वैज्ञानिक इस जन्तु के उपयोग के बारे अनभिज्ञ थे । मछुआरे आदि काल से उड़ीसा और बंगाल तटों से इन केंकड़ों को पकड़ कर खाद के रूप में उपयो करते थे । कभी-कभी वे अकारण ही इनको पानी से बाह निकाल कर फेंक देते थे । इस प्रकार भारी केंकड़ों की हा होती थी । परन्तु पिछले कुछ वर्षों में वैज्ञानिकों जागरूकता आई और इन केंकड़ों के ऊपर नियोजित ढंग अनुसंधान आरम्भ किये गये । मछुआरों और तटी प्रदेशवासियों को इस केंकड़े के उपयोग और पालन-वि का प्रशिक्षण दिया गया । राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान का इ कार्य में सबसे बड़ा योगदान रहा ।

राज केंकड़ा के वयस्क जोड़े अंडजनन के लि ज्वार के समय तट पर लगातार आते रहते हैं तथा रेत के अन्दर छोटे-छोटे गड्ढों में अंडे देकर वापस गहरे समुद्र में चले जाते हैं । तट पर प्रवास के समय ही इन केंकड़ों का रक्त बायसेट बनाने के लिये एकत्रित किया जाता है । रक्तदान के पश्चात् जीवित केंकड़ों को दुबारा समुद्र में छोड़ दिया जात है । तट पर केंकड़ा बड़ी तत्परता से अपने अंड़ों को रेत से ढ़क देता है तथा इन अंडों का ऊष्मायन रेत के अंदर होत है । 40-45 दिन बाद इन अंडों से युग्मक निकल आते हैं जो उल्टे तैरते हुए समुद्र में पहुँच जाते हैं ।

तट पर केंकड़ों का प्रवसन सुनियोजित ढंग से होत है जो पूर्णतः ज्वार और चन्द्रमा के ऊपर निर्भर करता है । उड़ीसा के बलरामगढ़ी तट (अक्षांस $21^{0}17'$ पश्चिम, देशांतर $87^{0}00'$ पूर्व) पर, जहाँ टेकिप्लियस गाइगस नामक जाति बहुतायत से है वहाँ केंकड़े के प्रवसन पर नवम्बर 1985 से अप्रैल 1987 तक । लायसेट उत्पादन के लिये केंकड़ों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर अध्ययन किया गया ।

बलरामगढ़ी के तट पर एक 200 मीटर की अध्ययनपट्टी का चयन किया गया । इस पट्टी में अंडजनन के लिये आने वाले समस्त केंकड़ों को पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिन पकड़ा गया । इनकी पकड़ ज्वार के समय से एक घंटा पूर्व तथा एक घंटा बाद के बीच के समय में की गयी । ज्वार का समय "भारतीय ज्वार-भाटा सारणी" - ज्योडीय एवं

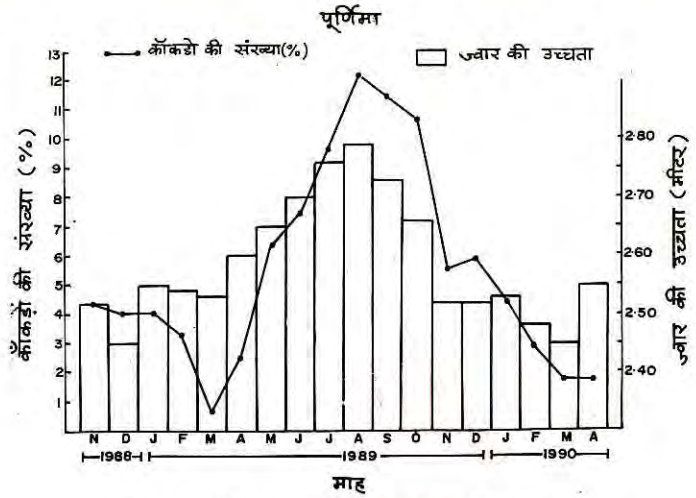

चित्र - २ पूर्णिमा के समय पकड़े गये केकडों की संख्या

नुसंधान शाखा द्वारा प्रकाशित खंण्ड से मालूम किया या । निश्चित पट्टी पर आने वाले केंकड़ों की संख्या, उनके ग, भार और लम्बाई के माप का लेखा बनाया गया । ध्ययन काल में 235 मादा (लम्बाई 9.8 से 24.6 से. मी. बीच) एवं 255 नर केंकड़े (11.1 से 17.4 से. मी. के च) पकड़े गये । इन आँकड़ों द्वारा केंकड़ों के प्रवसन की णना की गई । इसके साथ साथ उस तट का तापमान, ारापन, पानी में ऑक्सीजन की मात्रा तथा अम्लता की माप ी की गई ।

बलरामगढ़ी के तट पर दो असमान ज्वार और दो समान भाटा की मिली जुली अर्ध दैनिक लहरें होती हैं । ार की उच्चता लगभग 2 मीटर होती है जो पूर्णतः मावस्या एवं पूर्णिमा के चन्द्रमा पर निर्भर करती है । इस ध्ययन में अंडजनन की क्रिया रात्रि की अपेक्षा दिन में धिक प्रेक्षित की गई । यही कारण है कि केंकड़ों की गणना र्फ दिन के समय में ही की गयी । चन्द्रमा की स्थिति तथा ार की उच्चता अंडजनन की क्रिया को पूर्णतः नियंत्रित रते हैं । पूरे वर्ष केंकड़े तट की ओर अंड-जनन के लिये ाते हैं जो इस बात का प्रतीक है कि भारतीय तटों पर राज कड़ा की प्रजनन प्रक्रिया सतत चलती रहती है । अमरीका ौर जापान आदि देशों की प्रजातियों का अंड-जनन सिर्फ छ माह के अन्दर ही सीमित है । फलस्वरूप लायसेट नाने के लिये केंकड़े सिर्फ 2-3 माह में ही मिलते हैं । भारत में पूरे वर्ष प्रजनन चलता रहता है अतः लायसेट निष्कर्षण लगातार हो सकता है ।

पूर्णिमा के समय नवम्बर 1988 से अप्रैल 1990 की अवधि में पकड़े गये केंकड़ों की संख्या चित्र-2 में दिखाई गयी है । ज्वार की उच्चता के अनुमान में केंकड़ो की संख्या बढ़ जाती है । पूर्णिमा के अधिकतम ज्वार के समय केंकड़ों की संख्या अमावस्या के ज्वार की अपेक्षा अधिक पाई गयी । सांख्यकी द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि होती है । अप्रैल से अक्तूबर 1989 की अवधि के पूर्णिमा के अधिकतम ज्वारों में केंकड़ों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक पाई गयी, जिसमें अगस्त 1989 में सर्वाधिक केंकड़े मिले । नवम्बर-दिसम्बर 1988, जनवरी-1989 की अमावस्या के ज्वार में केंकड़े अधिक पकड़े गये ।

केंकड़ों के माप और आकार के अध्ययन में मादा की माप 10 से 12 से. मी. और 16.1 से 2.6 से. मी. के बीच पाई गई । 12.1 से 18 से. मी. के बीच की एक भी मादा केंकड़ा नहीं पकड़ी गई । इसके विपरीत नर केंकड़ों की माप सिर्फ 12.1 से 18 से. मी. के बीच पाई गयी । ऐसा प्रतीत होता है कि 18 से. मी. से ज्यादा लम्बाई होने पर नर केंकड़े का लिंग उल्क्रमण हो जाता है और वह मादा केंकड़ा में परिवर्तित हो जाता है । इस तथ्य की पुष्टि के लिये अध्ययन जारी है ।

खारेपन का भी प्रभाव केंकड़ों पर पड़ता है । वर्षा ऋतु में समुद्र का खारापन अपेक्षाकृत कम हो जाता है और इस अध्ययन में पाया गया कि केंकड़ों का भार भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है । खारापन कम होने से पानी का घनत्व घट जाता है और केंकड़ों के रुधिर का घनत्व बढ़ जाता है जिससे परासरण सिद्धांत के अनुसार समुद्री पानी उनके शरीर में प्रवेश कर जाता है । यही कारण है कि वर्षा ऋतु में नीले खून की मात्रा बढ़ जाती है और परिणामस्वरूप शरीर का भार भी बढ़ जाता है ।

इस अध्ययन द्वारा यह जानकारी मिली कि बलरामगढ़ तट पर केंकड़ों का प्रवसन जानने के लिये वहाँ ज्वार की उच्चता का समय जानना आवश्यक है । इस प्रवसन का प्रमुख कारण अंड-जनन ही प्रतीत होता है क्योंकि अध्ययन काल में सिर्फ केंकड़ो के परिपक्व जोड़े ही पाये गये ।

इन केंकड़ों के उपयोग से संबंधित कई प्रकार की धारणायें हैं । चीन की गर्भवती महिलायें इनके अंडों को खाती हैं । उनका विश्वास है कि इन अंडों के खाने से भ्रूण के अन्दर एक अभूतपूर्व असंक्राम्यता उत्पन्न होती है । भारत में उड़ीसा एवं बंगाल की जनजातियाँ इन केंकड़ों के शरीर के कवच से दर्द-निवारक औषधि बनाती हैं जिन्हें वे किसी प्रकार की माँस-पेशियों के दर्द निवारण के लिये उपयोग करती हैं । इसकी पूँछ के छोटे-छोटे टुकड़े करके ये लोग बाजुओं में बाँध लेते हैं । उनका विश्वास है कि इससे हर प्रकार के जोड़ों के दर्द में राहत मिलती है । ये धारणायें कहाँ तक सत्य हैं, इसकी अभी तक वैज्ञानिक तौर पर पुष्टि नहीं की गई है । परन्तु निकट भविष्य में इन विषयों पर अध्ययन किया जायेगा ।

भारत में लायसेट का उपयोग पिछले कुछ वर्षों से प्रारम्भ हुआ है । यह यौगिक भारत द्वारा विदेशों से भारी कीमत पर आयातित किया जाता है । इस तरह विदेशी मुद्रा काफी मात्रा में खर्च हो जाती है । शीघ्र ही इस यौगिक का उत्पादन हम भारत में ही करने लगेंगे जो अपेक्षाकृत सस्ता होगा । विदेशी मुद्रा की बचत के साथ-साथ हम लायसेट का बड़ी मात्रा में निर्यात भी कर पायेंगे ।

* * *

(पृष्ठ 29 का शेष भाग)

चुस्त दुरुस्त बने रहते हैं । आधुनिक जीवन की विसंगति और तनाव से मुक्ति पाने के लिए योगमय सक्रिय जी पद्धति अपनाना अत्यन्त आवश्यक है । हमेशा चिन्तित उ तनाव ग्रस्त रहने वाले "ए" प्रकार के व्यक्तित्व के स्वामियों लिए भी सक्रिय जीवन पद्धति का अपना महत्व है । क्यों इससे वे धीरे धीरे तनाव मुक्त होते जाएंगे और उनका र चाप भी सामान्य हो जाएगा । निष्क्रियता से नाता तोड़ तथा तनाव और चिन्ता रहित सक्रिय योगमय जीवन पद्ध अपनाकर और अपने आहार में समुचित परिवर्तन करके ह अपने आपको स्वस्थ रखते हुए हृदय रोगों से बचाए र सकते हैं ।

* * *

लेखकों से निवेदन

- "वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखे :
- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिए छोड कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें, पाण्डुलिपि में मूलपाठ के साथ उसी पृष्ठ पर चित्र न बनाएं,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी ।

— संपादक

खिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ास्टिक

- डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी
रसायन विभाग,
धर्म समाज कालेज, अलीगढ़.

यूं तो प्लास्टिक शब्द कान में पड़ते ही प्लास्टिक के खिलौनों अथवा बर्तनों की ओर ध्यान जाता है परंतु जीवन का आज वह कौन सा क्षेत्र है जो इसकी उपयोगिता से किसी न किसी रुप में प्रभावित हुआ हो । इसीलिए वर्तमान युग को प्लास्टिक युग की संज्ञा भी दी जाने लगी है । आखिर ये क्या हैं ? इनकी क्या क्या विशेषतायें हैं ? इत्यादि पहलुओं पर कुछ जानकारी इस लेख में दी गयी है ।

सामान्यतः उच्च अणु भार वाले कठोर असंतृप्त ड्रोकार्बन के उच्च बहुलक, जो गर्म करने पर मुलायम हो ा, प्लास्टिक कहलाते हैं । प्लास्टिक कार्बनिक पदार्थ होते । इसको बहुलीकरण रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त किया ा है अतः इसे संशलेषित प्लास्टिक भी कहते हैं । उच्च नक में संरचनात्मक अवयव बारम्बार एक दूसरे से जुड़े हैं इसीलिए इनका अणुभार अधिक होता है और ;-आकार भी बड़ा होता है ।

प्लास्टिक शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम अमरीका में ा था । प्लास्टिक हल्की होती है और गर्म कर इसे किसी शक्ल में बदल सकते हैं, इसके ऊपर नमी का प्रभाव नहीं ता, इतना ही नहीं अम्ल और क्षार भी इस पर कोई प्रभाव डाल पाते अतः प्लास्टिक बहुत स्थिर है । इन्हीं ाषताओं के कारण प्लास्टिक की महत्ता इतनी बढ़ गयी है आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका उपयोग देखने को ाता है ।

स्टिक का वर्गीकरण:

1. प्लास्टिक दो प्रकार की बहुलीकरण क्रिया द्वारा ा की जा सकती है । इसी आधार पर प्लास्टिक को दो हों में रखा जाता है ।

ैखिक बहुलक प्लास्टिक - जब कई एकलक एक लाइन ुड़ कर बहुलक प्लास्टिक बनाते हैं तब इस प्लास्टिक को क बहुलक प्लास्टिक कहते हैं जैसे पौलीथीन, विनायल स्टिक ।

(ii) अणु संकरित बहुलक प्लास्टिक - जब कई एकलक कई स्थानों पर जुड़कर बहुलक बनाते हैं तब प्लास्टिक को अणु संकरित बहुलक प्लास्टिक कहते हैं जैसे बैकेलाइट ।

2. रासायनिक संरचना के आधार पर प्लास्टिक को तीन वर्गों में रखा गया है । i) सेल्यूलोज प्लास्टिक ii) संशलेषित प्लास्टिक तथा iii) प्रोटीन प्लास्टिक ।

3. ऊष्मा सहने की क्षमता के आधार पर भी प्लास्टिक को दो समूहों में रखा गया है :

i) थर्मोप्लास्टिक - इस समूह में वह प्लास्टिक आती हैं जिसको ऊष्मा सहने की क्षमता कम होती है क्योंकि प्लास्टिक गर्म करने पर मुलायम हो जाती है । इस अवस्था में इसे किसी भी रूप में बदल सकते है । ठण्डी होने पर कठोर हो जाती है । जैसे, पौलीथीन, पौलीविनायल, पौलीस्टाइरीन, सेल्यूलोस एस्टर, पौलीप्रोपोलीन आदि ।

ii) थर्मोसेटिंग प्लास्टिक - वह प्लास्टिक जिस की ऊष्मा सहने की क्षमता अधिक होती है थर्मोसेटिंग कहलाती है । यह गर्म करने पर मुलायम नही बल्की कठोर हो बन जाता है जैसे फीनोल - फार्मल्डिहाइड प्लास्टिक, यूरिया-फार्मल्हिहाइड प्लास्टिक आदि ।

साधारणतया प्लास्टिक का वर्गीकरण ऊष्मा को सहने की क्षमता के आधार पर ही अधिक प्रचलित है ।

थर्मोप्लास्टिक - यह प्लास्टिक असंतृप्त पदार्थो के बहुलीकरण द्वारा प्राप्त होती है । बहुलीकरण की क्रिया जो यहां होती है वह योगात्मक है । इस प्रकार योगात्मक बहुलीकरण द्वारा रैखिक बहुलक प्राप्त होता है । प्लास्टिक को बनाते समय कुछ पदार्थ डाले जाते हैं जिससे प्लास्टिक

साधारण ताप पर कठोर तथा लचक वाली हो जाती है । इन पदार्थों को प्लास्टिक साइजर कहते है । इनका क्वथनांक बहुत अधिक होता है । जैसे ट्राई क्रीसाइल फास्फेट, एस्टर आफ थेलिक और स्टेयरिक अम्ल । रासायनिक संरचना के आधार पर थर्मोप्लास्टिक को दो समूहो में वर्गीकृत किया गया है; 1) सेल्यूलोज प्लास्टिक 2) योगात्मक बहुलक प्लास्टिक

सेल्यूलोज प्लास्टिक - यह प्लास्टिक सेल्यूलोज डाई नाइट्रेट जिसे पाइरोजाइलिन भी कहते हैं, से बनाई जाती है । इस प्लास्टिक में चूँकि सेल्यूलोज है इस कारण ही इसे सेल्यूलोज प्लास्टिक कहते हैं ।

पाइरोजाइलिन (2 भाग), केम्फर (1 भाग) को एल्कोहल के साथ मिलाते हैं । फिर छान लेते हैं । छनित ठोस में प्लास्टिसाइजर तथा रंगीन पदार्थों को मिलाते हैं, फिर दबाते हैं तो लचकदार पाइरोजाइलिन प्लास्टिक बन जाती है ।

पाइरोजाइलिन प्लास्टिक की सबसे अधिक प्रचलित प्लास्टिक को सेल्यूलाइड कहते हैं । यह ठोस है, पर 75^0 सें. ग्रे. पर मुलायम हो जाती है अतः इसे दबाकर, घुमाकर किसी भी रूप में बदल सकते है । इसे रंगीन बनाने के लिए इसमें रंगीन पदार्थ मिलाते हैं । सफेद हाथीदांत के समान रंग के लिए जिंकआक्साइड, व पारदर्शी होने के लिए यूरिया मिलाते हैं । केम्फर जहाँ प्लास्टीसाइजर का काम करता है वहीं इसके विस्फोटक गुण को भी समाप्त करता है । यह प्लास्टिक प्रज्वलनशील है । यह इसका अवगुण है ।

यूरोप में सेल्यूलाइड बनाने के लिए केम्फर को एल्कोहल में घोलते हैं । फिर इस घोल को पाइरोजाइलिन पर डालते हैं और गर्म करते हैं । घोलक उड़ जाता है और मुलायम ठोस सेल्यूलाइड प्लास्टिक बन जाती है ।

सेल्यूलाइड प्लास्टिक का उपयोग कंघें, ब्रश, चश्में का फ्रेम, विभिन्न प्रकार के बर्तन, फिल्म बनाने में किया जाता है । सेल्यूलाइड प्लास्टिक सबसे लोकप्रिय प्लास्टिक है । इसके अलावा भी अन्य प्लास्टिक हैं जैसे पाइरालिन प्लास्टिक, विस्कोलाइड प्लास्टिक, फाइबरलाइड प्लास्टिक, सेल्यूलोज एसीटेट प्लास्टिक आदि ।

सेल्यूलोज डाई ऐसीटेट प्लास्टिक पाइरोजाइलि प्लास्टिक से अच्छी है क्योंकि इसके अन्दर विस्फोटक ग नहीं है और देरी से जलती है । सेल्यूलोज डाइ ऐसी प्लास्टिक का उपयोग मुख्यतः फोटोग्राफी की फिल्म चलचित्र की फिल्म बनाने में किया जाता है । पर टेलीफोन, हवाई जहाज की चादर, मोटर गाड़ी के भा खिलौने बनाने में भी इसको प्रयुक्त करते हैं ।

सेल्यूलोज ऐसीटेट प्लास्टिक बनाने के लि सेल्यूलोज ऐसीटेट को घोलक में घोल कर प्लास्टीसाइ मिलाते है । छान कर छनित ठोस को दबाकर छड़ें, नलिक व चादरें बना लेते हैं ।

नवीन खोजों से सिद्ध हुआ कि मिश्रित सेल्यूलो एस्टर को भी प्लास्टिक की तरह उपयोग कर सकते हैं । व भी सेल्यूलोज प्लास्टिक है । मिश्रित सेल्यूलोज एस्टर प्रयोग किए जाते हैं वे हैं सेल्यूलोज-ऐसीटो-प्रोपियोने सेल्यलोज-ऐसीटो-ब्यूटाइरेट । इन्हें बनाने के लिए प्रथ सेल्यूलोज की ऐसीटिक अम्ल तथा प्रोपियोनिक अम्ल ब्यूटाइरिक अम्ल से क्रिया कराते हैं । फिर घोलक में घो कर प्लास्टीसाइजर मिलाते हैं । छान लेते हैं । छनित ठो मिश्रित सेल्यूलोज एस्टर प्लास्टिक कहलाता है । व प्लास्टिक सेल्यूलोज एसीटेट प्लास्टिक से अच्छी मानी जा है ।

एक और अन्य सेल्यूलोज प्लास्टिक का आविष्क हुआ । इसे सेल्यूलोज ईथर प्लास्टिक कहते हैं । इसे बना के लिए सेल्यूलोज की सोडियम हाइड्रोक्साइड से क्रि करते हैं फिर एल्कायल क्लोराइड या डाई एल्कायल सल्फे मिलाते हैं जिससे सेल्यूलोज ईथर प्लास्टिक बन जाती है यह आसानी से कार्बनिक घोलकों में घुलनशील है । इस ऊपर नमी का प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ता है । यह अधि ताप (100-130^0 सें. ग्रे.) पर मुलायम होती है । इन विशेषताओं के कारण सेल्यूलोज ईथर प्लास्टिक सेल्यूलो ऐसीटेट प्लास्टिक से अच्छी मानी जाती है । सेल्यूलोज ईथ प्लास्टिक का प्रयोग, ढली हुई चीजों, न टूटने वाले खिलौ रेफ्रीजरेटर के भाग बनाने में विशेष रूप से किया जाता है ।

योगात्मक बहुलक प्लास्टिक - ये विभिन्न प्रकार होते हैं । इनके वर्गीकरण व नामकरण का आधार वह पदा

जेसकी बहुलीकरण क्रिया से ये बनती हैं । इस आधार पर
प्रचलित प्लास्टिक बनाये गये है;

पौलीथीन प्लास्टिक - इस प्लास्टिक को एथिलिन से लीकरण द्वारा बनाया जाता है । अतः यह एथिलीन का लक है । बहुलीकरण की क्रिया योगात्मक व रैखिक होती । जो बहुलक बनता है - उसे पौलीएथिलीन कहते हैं । तु बोलचाल में इस प्लास्टिक को पौलीथीन प्लास्टिक ते हैं । पौलीथीन बहुलक उच्च दाब और कम दाब दोनों बनता है । उच्च दाब पर बहुलक का घनत्व कम और कम र पर अधिक होता है । इस प्रकार दो प्रकार के बहुलक ते हैं । (अ) उच्च दाब या कम घनत्व का पौलीथीन लक (ब) कम दाब या अधिक घनत्व का पौलीथीन लक ।

इस प्लास्टिक पर अम्ल, क्षार का प्रभाव नहीं ता । गर्म करने पर मुलायम हो जाती है । इसे सांचों में ा सकते हैं । अतः इसका उपयोग ढले हुए खिलौने, पाइप, ूटने वाली बोतलें, दवाइयों के रेपर, क्रीम पेस्ट के ट्यूब दे बनाने में किया जाता है । यह विद्युत कुचालक है लिए तार-इनस्यिूलेशन के लिए भी उपयोग किया ा है । आजकल इसकी पतली फिल्म का पैकिंग सामग्री रूप में बहुत उपयोग किया जा रहा है । अधिक घनत्व ा पौलीथीन का उपयोग घरेलू बर्तनों, जार आदि बनाने में ा जाता है ।

टेफलौन प्लास्टिक - यह प्लास्टिक टेट्राफ्लोरोएथिलीन च्च दाब पर बहुलीकरण से प्राप्त होता है । जो बहुलक ा है वह पौली टेट्राफ्लोरोएथिलीन है । यह एक रैखिक नक है । इसका गलनांक बहुत अधिक (329^0 सें. ग्रे.) ा है । इस पर गर्मी और रासायनों का प्रभाव नहीं होता । यह कठोर विद्युत अवरोधक बहुलक है । इस कारण का उपयोग तार इन्सुलेशन के लिए किया जाता है । ये गेसकेट तथा वाल्व भी बनाये जाते हैं ।

पौलीप्रोपीलीन प्लास्टिक - इस प्लास्टिक को प्रोपीलीन हुलीकरण द्वारा प्राप्त किया जाता है । बहुलीकरण की ा Al $(Et)_3$ और $TiCl_4$ की उपस्थिति में होती है । ोप्रोपीलीन एक रैखिक बहुलक है । यह बहुलक रवेदार व हल्का है । इसकी अपनी विशेषताएं हैं जिस कारण यह पौलीथीन से अच्छा माना जाता है । पौलीप्रोपीलीन बहुलक कठोर, न टूटनेवाला, बल खानेवाला है । इसीलिए इसका उपयोग फिल्म व रस्सी बनाने में किया जाता है ।

(4) पौलीस्टायरीन प्लास्टिक - यह प्लास्टिक स्टायरीन के योगात्मक व रैखिक बहुलीकरण द्वारा बनाई जाती है । पौलीस्टायरीन बहुलक रैखीय है । इसके ऊपर क्षार तथा हैलोजन अम्ल का प्रभाव नहीं होता । इस का उपयोग बोतलों के ढक्कन, रेफ्रीजरेटर के भाग, रेडियों के केबीनेट, खिलौने, ब्रुश हेन्डिल, कंघे आदि बनाने में किया जाता है ।

(5) पौली एक्राइलाइड प्लास्टिक - यह प्लास्टिक भी बहुलीकरण द्वारा ही प्राप्त होती है । यह एक्राइलिक एस्टर की बहुलक है । मिथाइल एक्राइलेट गर्म करने पर रैखिक बहुलीकरण की क्रिया कर पोली मिथाइल एक्राइलेट बहुलक बनाते हैं ।

पौली मिथाइल मीथ एक्राइलेट मुख्य एक्राइलाइड प्लास्टिक है । मिथाइल मीथ एक्राइलेट के रैखिक बहुलीकरण द्वारा पौलीमिथाइल मीथ एक्राइलेट बहुलक बनता है ।

यह प्लास्टिक रंगहीन पारदर्शक है । यह विभिन्न नामों से प्रचलित है जैसे ल्यूसाइट, क्रस्टलाइट, प्लेक्सोग्लास । यह प्लास्टिक काँच के समान है, पर आसानी से टूटता नहीं है । इस पर निशान कम पड़ते हैं अतः इस का उपयोग काँच के स्थान पर किया जाता है ।

(6) पौली विनायल प्लास्टिक - यह प्लास्टिक विनायल क्लोराइड, विनायल एसीटेट, विनायलिडीन क्लोराइड के रैखिक, योगात्मक बहुलीकरण द्वारा प्राप्त होती है । जब विनायल क्लोराइड को उच्च दाब पर गर्म करते हैं तब योगात्मक बहुलीकरण की क्रिया होती है जिससे रैखीय पौली विनायल क्लोराइड बहुलक प्राप्त होता है । इसे पी. वी. सी. प्लास्टिक भी कहते हैं । इसका व्यवसायिक नाम कोरोसील है । यह कठोर है - परन्तु ट्राई क्रीसायल फास्फेट, जो प्लास्टीसाइजर है, मिलाने पर बहुत उपयोगी प्लास्टिक हो जाती है । इस प्लास्टिक का उपयोग फर्श के लिए चादरें,

खिलौने, सीट कवर, पतली चादरें, बरसाती, फोनोग्राफ रिकार्ड बनाने में किया जाता है ।

विनायल ऐसीटेट को परआक्साइड की उपस्थिति में गर्म करने पर योगात्मक बहुलीकरण द्वारा पौली विनायल एसीटेट बहुलक प्राप्त होता है । यह मुलायम होता है । यह पौलीविनायल क्लोराइड के साथ मिलकर कठोर प्लास्टिक बनाती है जिसे विनायलाइट कहते हैं ।

पौलीविनायल एसीटेट के जल-अपघटन से पौलीविनायल एल्कोहल बनता है । यह एल्कोहल ब्यूस्टरल्डिहाइड के साथ संघनन कर एक प्लास्टिक देता है जिसे पौलीविनायल ब्यूटरल कहते है । यह ग्लास को सुरक्षा प्रदान करता है । पौलीविनायलिडीन क्लोराइड बहुलक विनायलिडीन क्लोराइड के योगात्मक बहुलीरण से प्राप्त होता है । इसका उपयोग रबड़-ट्यूब फैक्टरी में किया जाता है ।

थर्मोसेटिंग प्लास्टिक - यह प्लास्टिक संतृप्त पदार्थो के संघनन द्वारा प्राप्त होती है । बहुलक कई स्थानों पर जुड़ा रहता है । अतः अणु संकरित बहुलक श्रृंखला पायी जाती है । इसी कारण यह प्लास्टिक अधिक कठोर-तथा अधिक ताप सहने वाली होती है । यह प्लास्टिक कई प्रकार की होती है जैसे (1) एल्काइड, (2) फीनोप्लास्ट, (3) एमीनोप्लास्ट, (4) पौलीयूरेथेन इत्यादि ।

(1) एल्काइड प्लास्टिक - यह प्लास्टिक पौली एल्कोहल और पौलीबेसिक अम्ल के संघनन द्वारा बनती है । चूँकि दोनों पदार्थ कई मुख्य समूह रखते हैं इस कारण अणु संकरित बहुलक श्रृंखला बनती है जिससे प्लास्टिक कठोर व अधिक ऊष्मा सहनेवाली हो जाती है । ग्लिसरोल और थेलिक एनहाइड्राइड के संघनन से ग्लिपटल नामक प्लास्टिक बनती है । यह कठोर, अघुलनशील, अर्धपारदर्शक, न पिघनेवाली है । इसका उपयोग कार पेनल और आवरण बनाने में किया जाता है ।

(2) फीनोलिक प्लास्टिक - जब फीनोल और फार्मल्डिहाइड क्रिया करते हैं तब योगात्मक क्रिया होती है जिससे हाइड्रोक्सी बेन्जायल एल्कोहल बनता है । यह एल्कोहल अम्ल की उपस्थिति में नोवोलेक नामक प्लास्टिक बनती है । क्षार की उपस्थिति में अणुसंकरित बहुलक श्रृंखला बनती जिससे बेकेलाइट नामक प्लास्टिक बनती है ।

यह कठोर तथा विद्युत अवरोधक है अतः इस उपयोग, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, कैमरे की बौ बिजली के स्विच, प्रेस, केतली का हेन्डिल, गीयर आदि बन में किया जाता है । यह प्लास्टिक प्लाई-लकड़ी को जोड़ सतह को रूप देने के लिए भी प्रयोग में लाई जाती है ।

(3) एमीन - एल्डीहाइडप्लास्टिक - इस समूह यूरिया-फार्मल्डिहाइड-प्लास्टिक आती है । फार्मल्डिहाइड घोल में यूरिया को घोलकर 130^0 सें. ग्रे. पर गर्म करने पहले रैखिक बहुलक बनता है फिर अणु संकरित बहुल बनता है । यही यूरिया फार्मल्डिहाइड प्लास्टिक है । रैखिक बहुलक बनते हैं वह मोनो मिथालोल और ड मिथायलोल यूरिया नाम से जाने जाते हैं ।

मोनोमिथायलोल यूरिया ही रैखिक बहुलक बन है जो इस प्लास्टिक का मुख्य भाग है । जबकि ड मिथायलोल यूरिया 126-130^0 सें. ग्रे. पर गर्म करने पहले द्रव फिर ठोस अणु संकरित बहुलक प्लास्टिक बन है । यह फोनोलिक प्लास्टिक से अच्छी प्लास्टिक है क्योंि यह रंगहीन कठोर है । इसे सांचों में ढाल सकते है । इस उपयोग बटन, बोतलों की टोपी, शल्य क्रिया के उपकर सौन्दर्य प्रसाधन के बर्तन, घरों की विभिन्न सामग्रियां, रं मिलाकर बहुरंगी सुन्दर सजावट की वस्तुओं के बनाने किया जाता है ।

(4) मिलामाइन - फार्माल्डिहाइड प्लास्टिक - यह प्लास्टि यूरिया फार्मल्डिहाइड प्लास्टिक के समान है । यह प्लास्टि मिलामाइन और फार्मल्डिहाइड के साथ संघनन कर बनती । मिलामाइन एक रासायनिक पदार्थ है । इसे 2, 4, 6 (ट्राइ एमीनो 1, 3, 5 ट्राईजीन भी कहते हैं ।

इस प्लास्टिक की पानी सोखने की शक्ति कम औ ऊष्मा सहने की अधिक क्षमता होती है । यह कठोर है घरेलू सजावटी वस्तुओं, और फर्नीचर की सतह समतल कर में इस प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है ।

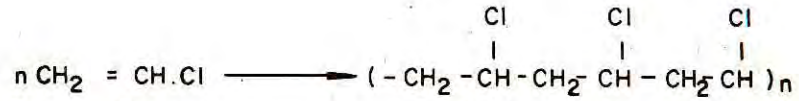

विनायलक्लोराइड — पौली विनायल क्लोराइड बहुलक

रैखिक थर्मोप्लास्टिक

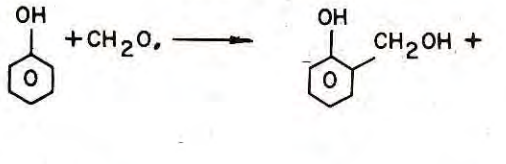

हाइड्रोक्सो बेन्जीयल एल्कोहल

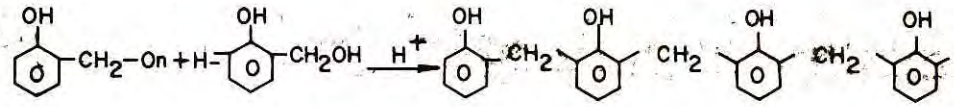

नोवोलेक प्लास्टिक

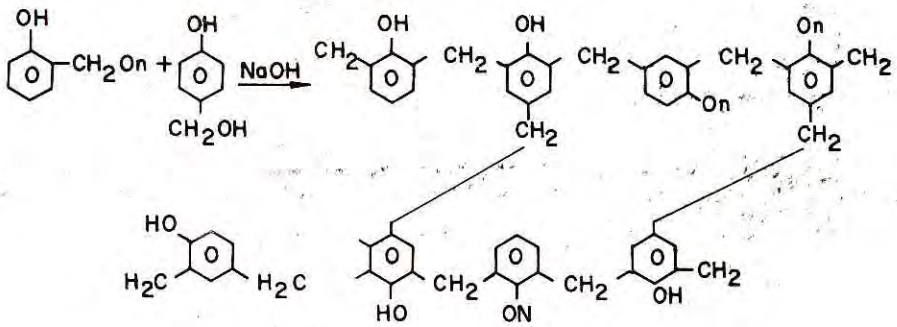

बेकेलाइट प्लास्टिक

अणु संकरित थर्मोप्लास्टिक

कुछ प्लास्टिकों के रासायनिक सूत्र

इपोक्सी प्लास्टिक - इ पी ऑक्साइड तथा डाई एमीन संघनन से अणु संकरित बहुलक द्वारा इस प्लास्टिक को ते हैं । यह कठोर, चिपकनेवाली, मुड़नेवाली होती है । पर अम्ल, क्षार का कोई प्रभाव नहीं होता । इसका ोग सतह को समतल करने के लिए, ग्लास, फाईबर ने के लिए किया जाता है ।

6. पौलीयूरेथेन्स प्लास्टिक - यह प्लास्टिक 2, 4 डाई आइसोसाइनोटोल्वीन तथा एडिपिक व ग्लिसरोल के पौलीएस्टर की क्रिया से बनती है । इसे 1, 6 हेक्सामिथलीन डाई आइसोसाइनेट तथा 1, 4 ब्यूटेन डाईओल की क्रिया से भी प्राप्त करते हैं । यह प्लास्टिक विद्युत अवरोधक है । इसको सांचों में ढाल सकते हैं । इस प्लास्टिक में खिचने की

शक्ति होती है । इस पर नमी, तेल, ग्रीस का प्रभाव नहीं होता है । यह सतह को समतल करने में काम आती है । इसका उपयोग चमड़े के स्थान पर किया जाता है । अतः आजकल जूतों के सोल बनाने में उपयोग किया जाता है । इसका सबसे महत्वपूर्ण उपयोग फोम बनाने मे होता है । यह फोम कार और फर्नीचर के कुशन के रूप में प्रयोग किया जाता है ।

एक नई प्लास्त्रिक रबड़ से बनाई जाती है । इसे प्ल्योफार्म के नाम से जानते हैं । इसके ऊपर अम्ल क्षार का कोई प्रभाव नहीं होता है ।

प्रोटीन प्लास्टिक - दूध की प्रोटीन केसीन से प्लास्टिक बनायी जाती है । इसे केसीन प्लास्टिक कहते हैं । केसीन दूध से प्राप्त करते हैं । केसीन पाउडर में रंगीन पदार्थ मिलाकर गर्म रोलर के बीच से पास कराते है तो केसीन प्लास्टिक की चादर मिल जाती है । इस चादर को कठोर बनाने के लिए फार्मल्डिहाइड के घोल में डालते हैं । इसका उपयोग अधिकतर बटन बनाने के लिए किया जाता है ।

गटापारचा प्लास्टिक - यह प्लास्टिक मलेशिया के रबड़ के पेड़ के लेटेक्स (दूध) से प्राप्त की जाती है । रबड़ के पेड़ का नाम पेलाक्यूयमगुटा है । इसीलिए इसे गटापारचा कहते हैं । लेटेक्स दूध के समान सफेद द्रव है । इसे तने से प्राप्त करते हैं । लेटेक्ट को एसीटिक अम्ल से क्रिया करा कर गटापारचा पीले रंग का ठोस पदार्थ मिलता है जिसमें 10% हाइड्रोकार्बन उपस्थित हैं । गर्म करने पर यह प्लास्टिक का रूप ले लेता है । इस प्लास्टिक पर पानी का प्रभाव नहीं होता है । इस कारण इसका मुख्य उपयोग समुद्र में बिछाने वाले तारों के इन्शुलेशन में होता है । दन्तविद्या में भी इसका प्रयोग किया जाता है । इससे गोल्फ की गेंद, खिलौने भी बनाये जाते है । टैनिस गेंदों को भी इसकी सहायता से बनाते है । अमरीका में इसे वलाटा के नाम से जानते हैं । यह प्लास्टिक भी हमारे बहुत उपयोग की है ।

सिर को चोट से बचाने के लिए हेलमेट का प्रयोग किया जाता है । यह हेलमेट भी विभिन्न प्लास्टिकों की सहायता से बनाया जाता है । टेबिल कवर, पैन, कंधा, स्विच अन्य घरेलू वस्तुओं में प्रयोग की जाती है ।

इस प्रकार हम विभिन्न प्रकार की प्लास्टिक प्राप्त क उन्हें तरह तरह से उपयोग मे लाकर अपने जीवन को सरल बना सकते हैं । प्लास्टिक हमारे जीवन का एक आवश्यव अंग बन गया है । आजकल घरों, आफिस, कारखानों, प्रयोग शालाओं में प्लास्टिक किसी न किसी रूप में प्रयोग की जाती है । प्लास्टिक अतीत की यादों को संजोये रखने में भी सहायक है । संचार के क्षेत्र में, शल्य क्रिया में भी प्लास्टिव महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है । आजकल प्लास्टिक के दरवाजे भी बनाने लगे है ।

प्लास्टिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रियाशील है य यों कहा जा सकता है कि यह आज के युग का महत्वपूर्ण आविष्कार है - जो मानव की सेवा में रत है ।

* * *

(प्लास्टिक अपशिष्ट का क्षय आसानी से न होने तथ दिनो दिन इसका प्रयोग बढ़ने से अब पर्यावरण प्रदूषण संबंधित प्रश्न उठने लगे हैं । अतः इसकी उपयोग पद्धति प सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है - सं.)

(पृष्ठ 36 से आगे)

पड़ती है । हाँलाकि ऐसे संगणक का संबंध तात्कालिक तौ पर तोडकर बाधा मिटाई जा सकती है । लान वे उपयोगकर्ताओं की संख्या सीमित रखना आवश्यक होता है । अन्यथा प्रत्येक उपयोगकर्ता को मुख्य संगणक की सेव विलंब से उपलब्ध होती है । लान द्वारा आंकडों की प्रसा गति 1 करोड़ बिट्स प्रति सेकंड तक प्राप्त की जा चुक है ।

लान सेवा का उपयोग कारखानों, शिक्षण संस्थाओं कार्यालयों, अस्पतालों, बैंकों इत्यादि स्थानों में बखूबी किय जा सकता है । भारत में संगणकों उपयोग तथा तत्संबंधी सेवाएँ निरंतर बढ़ रही हैं । अतः हमारे देश में निश्चय ह इनका भविष्य उज्वल है । * * *

ाखिल भारतीय हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1991) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ीले गुलाब के विकास का ैज्ञानिक पृष्ठाधार

- डा. सुबोध कुमार दत्त एवं राकेश कुमार पाण्डेय
उत्परिवर्तन प्रजनन प्रयोगशाला
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

प्राकृतिक गुलाबी और लाल के अलावा अन्य कई रंगों के गुलाब संकरण, प्रेरित उत्परिवर्तन तथा चयन के परिणामस्वरुप आज उपलब्ध हैं । परंतु तमाम कोशिशों के बावजूद नीले गुलाब की किस्म विकसित नहीं हो पाई है । इस दिशा में वैज्ञानिक प्रयास और संभावनाओं पर, प्रस्तुत लेख में चर्चा की गयी है ।

गुलाब पृथ्वी पर मनुष्य से भी पहले आया था और खों वर्षों से उगाया जाता रहा है । तीन करोड़ वर्ष प्राचीन ाब के जीवाश्म मिलने के वृत्तान्त मौजूद हैं । ग्रीक और न पुराणशास्त्रों में उनकी आदिकालीन सभ्यता में गुलाबों चित्रण किया गया है । गुलाब शान्ति और प्रेम की देवी नस' का प्रतीक है । तमाम फूलों में गुलाब ने मनुष्य मात्र सबसे अधिक आकर्षित किया है और इस तरह से इसने ष्य के हृदय में एक विशेष स्थान बनाया है । गुलाब ने ों से हर तरह के लोगों को रंग, सुगंध और सौंदर्य उपलब्ध ाया है ।

प्रकृति जो हमें चारों तरफ से घेरे हुए है, प्रधान रुप से है, इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे पौधे या यों के हिस्से जो कि इस विशाल हरियाली के विरोधी रंग धारण किये हैं, व मनुष्य तथा जीव जगत के अन्य जीवों सदैव मोहित करते हैं । यद्यपि पीले रंग के विभिन्न उतार ाव वाले रंगों को लोग बहुत पसन्द करते हैं, किन्तु सबसे धिक आकर्षित करने वाला रंग वही है जो हरे रंग का ोधी हो अर्थात लाल एवम् नीला रंग । सामान्य रुप से सुंदर रंग जो फूलों एवम् फलों में पाये जाते हैं, व एक या से अधिक फ्लेवोनायड यौगिक जिसे हम एन्थोसायविन नाम से जानते हैं, के समूह की उपस्थिति के कारण होते । आभूषणात्मक पौधों में उनके सौंदर्य प्रसाधनों और ापारिक मूल्यों के नाते भिन्न - भिन्न रंगों का विवेक-पूर्ण ाव बहुत पहले से ही किया जाता रहा है, तथा किसी विशेष वर्ग के पौधे में पाये जाने वाले रंगों का स्वरुप प्रायः विस्तृत होता है ।

आजकल गुलाब भिन्न-भिन्न रंगों एवम् छायाओं में विद्यमान है, लेकिन सच्चे अर्थों में नीले गुलाब का अस्तित्व ही नहीं है । नीले गुलाब के संभावित विकास के सिलसिले में प्रमुख गुलाब विशेषज्ञों, वर्णसंकर विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों में मतभेद है और वह समय कब आयेगा जब नीले गुलाब की उत्पत्ति संभव होगी, क्या कभी नीले गुलाब का विकास संभव हो सकेगा ? यह जानने को हर व्यक्ति उत्सुक है ।

फलों में नीला रंग एक एन्थोसायनिन, डेलिफिनिडिन द्वारा उत्पन्न होता हैं । गुलाबों की बहुत सारी प्रजातियों को लोगों द्वारा नीले गुलाब की संज्ञा दी गई है, लेकिन वास्तव में ये सभी प्रजातियां 'माउव' वर्ग की हैं । 'माउव' वर्ग के गुलाबों को सामान्य रुप से हल्के बैंगनी, पीले या नीले गुलाब के रुप में जाना जाता हैं । लेकिन इसके लिए - सर्वाधिक उपयुक्त शब्द 'माउव' ही है । 'माउव' हल्का बैंगनी, बैंगनी या बकाइन रंग के रुप में वर्णित होता है ।

रंगों के वर्ण पट पर साधारण रुप से तीन प्रमुख प्राथमिक रंग लाल, नीला और पीला रंग ही होते हैं । जब ये तीनों रंग भिन्न - भिन्न अनुपात में मिलाये जाते हैं तो इनसे अलग अलग रंगों का विकास होता हैं । लाल तथा नीले रंगों का मिश्रण चमकीला लाल या बैंगनी रंग देता हैं । अब सबसे रहस्यमय सवाल यह है कि इन चमकीले रंगों की तमाम किस्में कंहां से उत्पन्न हो गईं जबकि गुलाब में नीला रंग अनुपस्थित था । ऐसा समझा जाता है कि प्रजननकों ने

नीले रंग की खोज में चमकीले रंगों की बहुत सी किस्में निकाल ली हैं । जिनसे हर तरह से यही अनुमान निकलता है कि मेण्डल के पृथक्करण के नियमों के अनुसार कई पीढियों के बाद नीला रंग वर्चस्व में आया क्योंकि लाल एवं नीला रंग, बैंगनी या चमकीले रंगों के अंग हैं ।

कुछ वैज्ञानिकों की विचारधारा के अनुसार यद्यपि गुलाब की जंगली अवस्था में आवश्यक नीला वर्णक "डेलिफिनिडिन" अनुपस्थित होता है, फिर भी उत्परिवर्तन नीले गुलाब के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है । बहुत ज्यादा संख्या में नई पुष्प-रंग किस्में स्वतःजात उत्परिवर्तन द्वारा विकसित हुई है । वाटिका गुलाबों की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रजातियों के विकास में प्रेरित उत्परिवर्तन ने योगदान दिया है । विभिन्न प्रकार के भौतिक एवं रसायनिक उत्परिवर्तकों का सफलतापूर्वक उपयोग विभिन्न अनुसंधान संस्थानों में गुलाब के उत्परिवर्तन हेतु किया गया है । प्रेरित शारीरिक उत्परिवर्तन के द्वारा भारी संख्या में गुलाब की नई जातियाँ 'राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित की गई हैं । इस संस्थान के उत्परिवर्तन प्रजनन प्रयोगशाला के विस्तृत कार्यों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि गुलाब की नई पुष्प-रंग किस्मों के विकास में उत्परिवर्तन प्रजनन एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकता हैं । इस बात की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि उत्परिवर्तन प्रजनन द्वारा नीले गुलाब की उत्पत्ति की जा सकती है ।

यदि 'डेलिफिनिडिन" का निर्माण करने वाला 'जीन' गुलाब में प्रविष्ट करा दिया जाये तो नीले रंग के गुलाब का विकास किया जा सकता है । प्रमुख जापानी जीव रसायनज्ञ डा. कानिची अरिसुमी के अनुसार डेलिफिनिडिन कुछ गुलाबों में मुख्यतः 'फ्लोरिबन्डा सामबा' के नव पल्लवों में उपस्थित होता है । सामबा की पत्तियों में 15% डेलिफिनिडिन, 80% सायनिडिन तथा शेष अन्य एन्थोसायनिन होते हैं । यह बात उल्लेखनीय है कि यदि चयनित संकरण के द्वारा गुलाब में डेलिफिनिडिन की मात्रा इतनी बढ़ा दी जाए कि यह दलपुंजों में भी उपस्थित हो जा तो नीले गुलाब का स्वप्न साकार किया जा सकता हैं ।

सहवर्षक संकल्पना के अनुसार कुछ कार्बनि संघटकों की साथ-साथ कोशिका द्रव्य में उपस्थि एन्थोसायनिन रखने वाले ऊतकों का रंग परिवर्तित व सकती है । सबसे ज्यादा मात्रा में उपस्थित सहवर्णक, टैनि और फ्लेवोन के ब्युत्पन्न हैं । उपर्युक्त पदार्थों के सा एन्थोसायनिन एक कमजोर संकर पदार्थ बना सकता जिससे नीलिमा बढ़ जाती है । डा. अरिसुमी के अनुसार इ समय पाये जाने वाले नीले गुलाब वास्तव में लैवेण्डर रंग हैं और ये गुलाब के लाल रंग सायविडिन वर्णकों सहवर्णकता के परिणामस्वरुप प्राप्त होते हैं । अ सहवर्णकता के ये लक्षण डेलिफिनिडिन के उच्च प्रतिशत साथ-साथ प्रत्यारोपित किया जाये तो नीले गुलाब तैयार सकते हैं ।

कुछ भारतीय वैज्ञानिकों के मतानुसार भारती गुलाबों की कुछ किस्मों जैसे "मी. ई. हेरिआट, मैकग्रेडि सनसेट', 'तलिसमा' तथा 'लेडी हिलिंगटन में थोड़ी मात्रा मायरिसटिन पाया जाता है । रासायनिक रुप से मायरिसटि एक फ्लेवेनोल वर्णक है जो कि नीले डेलिफिनिडिन संबंधित है, परन्तु यह संरचनात्मक रुप से केन्द्रीय च (सेन्ट्रल रिंग) के आक्सीकरण स्तर पर नीले डेलिफिनिडित भिन्न है । भारतीय वैज्ञानिकों के अनुसार 'उना वालेक' मायरिसटिन मुख्य वर्णक हैं । परंतु रसायनज्ञ जे. बी. हरबो ने 'उना वालेक' तथा कुछ अन्य गुलाबों (जिनका कि भारती वैज्ञानिकों ने उल्लेख किया था) का अध्ययन किया तो पा कि मायरिसटिन इन सभी में अनुपस्थित होता है । उन्हों लगभग सभी ज्ञात बैंगनी गुलाबों का तथा नीले प्रजनन पंरि वाली "साम मैक ग्रोडी' किस्म का भी परीक्षण किया त किसी प्रकार की डेलिफिनिडिन की उपस्थिति से इंका किया । उनके अनुसार जिन गुलाबों में नीला रंग प्रतीत हो है वह सायनिडिन एवं टैनिन पदार्थों के सहवर्णकता के कार ही होता है जो दल पुंजों में उपस्थित होते हैं । अतः यह क जा सकता है कि पेचीदा एवं प्रचुर संकरण तथा उत्परिवर्त

ासों से सत्य नीले गुलाब का चयन संभव है या फिर नन्दा सहवर्णकता द्वारा नीले गुलाब का विकास किया जा ता हैं ।

सहवर्णकता संकल्पना के अतिरिक्त एक विचारधारा अनुसार कुछ खनिज पदार्थ भी कई महत्वपूर्ण पुष्प रंगों के ए जिम्मेदार हैं । पुष्प का नीला रंग एक अघुलनशील ल्कोहलिक, कार्बनिक-धात्विक संकर, जिसमें मैग्नीशियम वा कैल्सियम होता है, के कारण होता हैं तथा पुष्प का ना बैंगनी रंग एन्थोसायनिन तथा एक अन्य लाल क्सोनियम लवण के मिश्रण द्वारा अथवा उनके बैंगनी वर्तन द्वारा होता है । हाल ही में प्राकृतिक स्रोतों से नीले ोसायनिन के निष्कर्षण के उपरान्त धातु - संकर सिद्धान्त लिक काम्पलेक्स थ्योरी) पर नया प्रकाश डाला गया है । र (1958, 1959) के अनुसार नीले एन्थोसायनिन रंग उत्पत्ति के लिए प्रोटोसायनिन या प्रोटोल्युपिनिन मेदार हो सकते हैं । प्रोटोसायनिन का मुख्य भाग एक संकर सायनिन है जिसमें लोहा (0.54%) तथा युमिनियम (0.27%) आवश्यक धातु के रुप में उपस्थित हैं । इसके अतिरिक्त यह एक अन्य कोलाइडल स्वभाव अज्ञात नाइट्रोजन पदार्थ से संबंधित है जिसके णामस्वरुप एक जटिल यौगिक का निर्माण होता है । ोल्युपिनिन एक उच्च आण्विक यौगिक है जोकि लोहा, ुमिनियम एवं डेलिफिनिडिन मोनो ग्लाइकोसाइडस द्वारा होता है । हयासी एवं उनके साथियों (1955) के सार कोमेलिनिन एक नीलाकारक पदार्थ है जिसके श्यक घटक मैग्नीशियम, पोटेशियम एवं एक अन्य ात पदार्थ हैं । मिटसुई एवं उनके साथियों (1959) के सार कोमेलिनिन एक नीला धात्विक एन्थोसायनिन है ाका मुख्य भाग आओबेनिन (डेलिफिनिडिन - 3 : 5 डाई ोसाइड जो कि 1 अणु पैरा क्युमिरिक अम्ल से संयुक्त है) के चार अणुओं, जो कि एक परमाणु मैग्नीशियम के आपस में जुड़ें होते है, से बना होता है । इसके अतिरिक्त पोटेशियम के दो अणु होते हैं जो संभवतः ोसायनिन में हाइड्राक्सिल ग्रुप के फिनालिक लवण के में होते हैं । यह एन्थोसायनिन का परिणामित धात्विक ट पुनः एक पीले फ्लेवनायड जैसे पदार्थ से संबद्ध होता है जो कि हो सकता है कि कोमिलिनिन के नीले रंग के स्थायित्व के लिए जिम्मेदार हो । अतः बात स्पष्ट है कि धात्विक - एन्थोसायनिन की रासायनिक संरचना का जानकारी के लिए एवं यह ज्ञात करने के लिए कि क्या इस वर्ग के यौगिक सभी नील वर्णक पुष्पों में उपस्थित होते हैं, गहन जांच की आवश्यकता है । यह बात पहले ही बताई जा चुकी है कि भारी संख्या में उत्परिवर्तित पुष्प रंग किस्मों का हमारी प्रयोगशाला में विकास किया गया हैं । गुलाब की किस्मों के रंग जो कि उत्परिवर्तन प्रजनन कार्यक्रम के अन्तर्गत लिए गये हैं तथा उनके उत्परिवर्तित रंगों को सारणी - 1 में दिया गया हैं । कुछ किस्मों में उत्परिवर्तन का प्रेरण एक से अधिक था । सारणी से यह भी स्पष्ट है कि गुलाब में उत्परिवर्तन द्वारा किस तरह से रंगों में बदलाव आता हैं ।

कुछ उत्परिवर्तित प्रजातियों के दल पुंजों के वर्णकों का स्पेक्ट्रोफोटोमेटरिक तथा थिन लेयर क्रोमेटोग्राफिक विधि द्वारा अध्ययन किया गया, जिसके उपरान्त हम इस परिणाम पर पहुंचे कि उत्परिवर्तित पुष्प रंग निम्न में से किसी एक विधि द्वारा विकसित हो सकते हैं ।

यह मान लिया जाए कि आरंभिक रुप में वर्णक के चार घटक A, B, C और D हैं जिनमें उत्परिवर्तन चार भिन्न दिशाओं में हो सकता हैं । पहली स्थिति में उत्परिवर्तन के फलस्वरुप एक या सभी वर्णकों के सान्द्रण में कमी या वृद्धि हो सकती है या दोनों (कमी तथा वृद्धि) हो सकती है । दूसरी स्थिति में एक या एक से अधिक वर्णकों का निर्माण बन्द होने से, एक या अधिक उपस्थित वर्णकों के सान्द्रण में कमी या वृद्धि या दोनों हो सकती हैं । तीसरी स्थिति में उत्परिवर्तन के द्वारा एक नये वर्णक E का निर्माण हो सकता है तथा इस नये वर्णक से एक या एक से अधिक उपस्थित वर्णकों के सान्द्रण में कमी या वृद्धि या दोनों हो सकती है । चौथी स्थिति में उत्परिवर्तन के फलस्वरूप नये वर्णक का निर्माण शुरु तथा एक या एक से अधिक वर्णक (वर्णकों) का निर्माण बन्द या दोनों हो सकता है जिसके साथ - साथ एक या एक से अधिक वर्णकों के सान्द्रण में कमी या वृद्धि या दोनों हो सकती हैं ।

आजकल के सभी रंगीन गुलाब, संकरण स्वतः जात या प्रेरित उत्परिवर्तन तथा चयन के परिणाम हैं । इन सारे

सारणी - 1 उत्परिवर्तन प्रजनन प्रयोगों के अन्तर्गत आने वाली गुलाब की किस्में

प्रजाति का नाम	*वास्तविक रंग*	*उत्परिवर्तित रंग या प्रकार*
अमेरिकास जूनियर मिस	कोराल गुलाबी	हल्का गुलाबी
अर्जुन	गुलाबी	हल्का गुलाबी
कन्टेपो	ताम्र नारंगी रंग	इम्पायर पीला
	तथा पीली आंखें	टेन्जारिन नारंगी
		गुलाबी दुरंगा
इफिल टावर	मध्यम गुलाबी	सफेद
फर्स्ट प्राइज़	गहरे लाल तथा हल्के	हल्का गुलाबी
	गुलाबी का मिश्रण	
गोल्ड डाट	पीला	हल्का पीला
		गाढ़ा पीला
इम्पिरेटर	चेरी लाल	दुरंगा
		गुलाबी
		छोटे फूलों के समूह के
		बीच में एक फूल
किस आफ फायर	क्रीमी दल, गहरा गुलाबी	पीला
	किनारा, पीला आधार	
मैजिक केराउसल	सफेद पर लाल किनारा	सफेद
मृणालिनी	फ्लाक्स गुलाबी	हल्का गुलाबी
नीलाम्बरी	लैवेन्डर	हल्का (लाइट)
आरेन्ज सेन्सेशन	क्रिमसन कारमीन	हल्का गुलाबी
पिंक परफेट	गुलाबी	हल्का
		गाढ़ा
क्वीन एलिजाबेथ	कारमीन रोज	ब्लोजम गुलाबी
सालमान ब्युटी	सालमान	क्रीमिश पीला
समर हाली डे	स्कारलेट वर्मीलियान	बहुत हल्का गुलाबी
सुपर स्टार	कोराल नारंगी	सफेद
विन्डी सिटी	गुलाबी	बहुत हल्का गुलाबी
जाम्ब्रा	बास्चुरीटम नारंगी	टान्जेराइन नारंगी
जोराइना	ग्रेनाडिन लाल	गुलाबी

ासों के बावजूद कोई भी आज तक नीले गुलाब को लग नहीं कर पाया है । जहां तक हम अनुभव करते हैं उक्त र्य हेतु संकरणकर्ताओं, उत्परिवर्तनकर्ताओं तथा जीव ायनज्ञों को सम्मिलित रुप से प्रयास करना होगा । सबसे ले वर्णक रचना का अध्ययन करना चाहिए । उसके रान्त उन गुलाबों की किस्मों का चयन संकरण एवं रिवर्तन के लिए करना चाहिए जिनकी वर्णक रचना नीले ाब से मिलती जुलती हो । अब तक उत्परिवर्तन प्रजनन ाओं का ध्यान केवल पुष्प रंग उत्परिवर्तन पर ही गया । अगर उत्परिवर्तन द्वारा सीधे नीले रंग की विकास न हो ा तो सहवर्णकता व दूसरी कोशकीय संरचना जो कि पुष्प ं से संबंधित हो, इत्यादि की तरफ ध्यान देना चाहिए । ले गुलाब के लिए वांछनीय भिन्न पौधों का चुनाव करके ं पुनः उत्परिवर्तन प्रजनन एवं संकरण कार्यक्रमों में ेमाल किया जा सकता है ।

आधुनिक पुनर्संयुग्मित डी. एन. ए. (रीकाम्बीनेन्ट डी. . ए.) तकनीक द्वारा निश्चित पौधों के जीनों में वांछित वर्तन करने की अतुलनीय संभावनाए बनी हैं । वश्यक जीनों को जीवाणुओं में प्रवेश कराया जा सकता है नकी पादपों में पुनऊत्पत्ति करके उच्च स्तरीय लक्षण वाले ा को पौधों में लाया जा सकता हैं । इस समय स्ट्रेलियन वैज्ञानिकों का एक समूह नीले गुलाब के विकास लिए आनुवंशिक इंजीनियरिंग का इस्तेमाल कर रहा है । गविक जीव वैज्ञानिकों (मॉलिकुलर बायोलोजिस्ट) का समूह जो कैलजीन पैसेफिक तथा नाक्सफील्ड र्किल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मेलबोर्न से संबंधित है साथ-साथ मिलकर एक कार्यक्रम पर कार्य कर रहे हैं और नीले गुलाब के निर्माण के नजदीक पहुंचने का दावा कर रहे हैं । उन्होंने उन सभी जीनों को अलग कर लिया है जो कि पौधों में रंग प्रदान करने के लिए जिम्मेदार हैं । उन्होंने पौधों की कोशाओं में नई जीनों के प्रत्यारोपण की तकनीक भी विकसित कर ली है । लंदन की टायफोर्ड अन्तर्राष्ट्रीय ब्रिटिश जैव प्रौद्योगिकी कम्पनी एक योजना बना रही है जिसके अन्तर्गत कैम्ब्रिज में बड़े पैमाने पर एक अनुसंधान केन्द्र खोलेंगी जिसमें प्रमुख फूलों में नये रंगों का विकास किया जायेगा, तथा इसके साथ-साथ डेलिफिनिडिन के जीन का इस्तेमाल करके नीले गुलाब को बनाने का प्रयास भी किया जायेगा ।

डा. दत्त अनुभव करते हैं कि गुलाब उद्यानों के दर्शक आकर्षक एवं असामान्य रंगों द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं । इनमें अधिकतर पुष्पों का विकास हाल ही में या पिछले दस-बारह वर्षों में हुआ है । इन फूलों में सुगंध न पाकर कई लोग निराश होते हैं और काले हरे एवं नीले गुलाबों के बारे में पूछताछ करते हैं । नीला गुलाब इस समय उपस्थित गुलाबों में एक अतिरिक्त तरह का होगा । उत्परिवर्तन प्रजनन कर्ताओं की कोशिश यही रहेगी कि गुलाब में नये रंगो का विकास किया जाये तथा नीले रंग के गुलाब का विकास एक महत्वपूर्ण योगदान होगा तथा पुष्प रंगों में विभिन्नताओं के रासायनिक एवं जैव रासायनिक कारणों की जानकारी का एक स्रोत होगा । फिलहाल भारत में नीले गुलाबों के विकास की कोई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कोशिश नहीं की जा रही है ।

* * *

स्वराज : यश, मैने कितनी बार तुम्हें चवन्नी चूसने से मना किया है मगर तुम मानते ही नहीं ।

यश : मगर इस में नुकसान क्या है ?

स्वराज : सैकड़ों हाथों से होकर यह चवन्नी तुम तक पहुंची है । इसमें बीमारी के बैक्टीरिया नहीं हो सकते ? मुंह में डालने पर ये बैकटीरिया तुम्हारे पेट मे जाकर बीमारी फैला सकते हैं ।

यश : यह कैसे हो सकता है ? आजकल की महंगाई में तो चवन्नी पर बैक्टीरिया भी जिंदा नही रह सकता ।

हम और हमारा सौरमंडल

डॉ. देवकी न
ए-1/304, हृषीकेश, स्वामी समर्थ न
अंधेरी (प), बंबई-400 0

पात्र परिचय :

स्वराज अरोडा : कक्षा-10 का एक मेधावी विद्यार्थी ।

रेखा शर्मा : 9 वीं कक्षा की छात्रा ।

यश : स्वराज का आठ वर्षीय भाई ।

नन्दलाल अरोड़ा : स्वराज के पिता । पेशे से रसायनज्ञ ।

श्रीमती कृष्णा अरोड़ा : नन्दलाल जी की पत्नी और स्वराज तथा यश की मां ।

प्रोफेसर राधाकृष्णन : स्वराज और रेखा के भौतिकी के प्रोफेसर । बचपन में ही आई.सी.एस. पिता के साथ उत्तर प्रदेश में आगमन एवं निवास । हिंदी बोलने एवं लिखने मे कोई कठिनाई नही ।

"मैने कहा, अजी सुनते हो" - किचिन से कृष्णा जी की यह आवाज ।

"कहो, क्या बात है ?" वे उठ कर किचिन में आकर पूछते हैं ।

"तुम्हें तो अपनी केमिस्ट्री और समाचारपत्र के अलावा न कुछ सूझता है और न याद ही रहता है । तुम्हें पता भी है कि आज शाम 5 बजे सूर्यग्रहण है ? सूर्यग्रहण के दौरान सिगरेट मत पीना । फिर 6 बजे नहाना भी है । स्वराज और यश स्कूल से आते ही होंगे । खाना खाकर बाजार जाओ और कुछ फल ले आओ । ग्रहण के बाद आज रात को भोजन में सिर्फ फल ही खाने होंगे ।" कष्णा जी ने आदेश सा दिया ।

नन्दलाल : अरी देवीजी, तुम कब सुधरोगी ? सूर्यग्रहण से फलों, स्नान और सिगरेट का क्या रिश्ता ? स्वराज सुन लेगा तो तुम्हारी खिल्ली उड़ायेगा ।

कृष्णा (तनिक झुंझलाकर) : ओफ्फोह ! राहु और केतु वहां सूर्य के पीछे पड़ें है और यहां तुम और स्वराज मेरे पीछे पड़े रहते हो । मैं कहती हूँ....

नन्दलाल : शांत, शांत, शांत । देखो गुस्सा मत करो और मेरे एक छोटे से सवाल का जवाब दो । मान लो मै और तुम कुछ गज़-दो गज़ दूरी पर एक दूसरे की ओर मुंह कर के खड़े हैं । इस बीच स्वराज आ जाता है और वह ठीक हमारे बीचों बीच आकर खड़ा हो जाता है तो क्या तुम मेरे पूरे शरीर को दे पाओगी ?

कृष्णा : वह बीच में आ खड़ा होगा तो तुम पूरे थाड़े दिखोगे ।

नन्दलाल : बिल्कुल ठीक । अब समझ लो कि सूर्यग्रह तुम्हारी समझ में आ गया ।

कृष्णा : मैं, तुम और स्वराज । इसमें सूर्यग्रहण कहां से गया ?

नन्दलाल : देखो मान लो मै सूर्य हूँ, तुम पृथ्वी और स्वरा चंद्रमा है । जब चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है तो हम पृथ्वी वालों को सूर्य का कु हिस्सा नहीं दिख पाता और सूर्य की रौशनी चंद्रमा के कारण हम तक ठीक से नही पहुंच पाती इसे ही हम सूर्यग्रहण कहते है, समझी ?

"बिल्कुल नहीं समझीं !" यह स्वर सुनकर श्र और श्रीमती अरोड़ा चौंक कर किचिन के दरवाजे की ओ देखते हैं जहां मुस्काराता हुआ स्वराज खड़ा है ।

स्वराज : "मां, दुनिया कहां पहुँच गयी है और तुम अभी अपने अंधविश्वासों में खोई हो । विज्ञान ने सि सूर्यग्रहण का राज ही उजागर नहीं किया बल्कि आज उसने हमारे पूरे सौरमंडल पर अपनी पैनी नज गड़ा रखी है । सच मां, आज हिन्दी के प्रोफेसर रामधारी सिंह दिनकर की कविता की यह पंक्ति हमें सुनाई कि ....

"चरण तल भूगोल, मुट्ठी में निखिल आकाश"

तो मुझे इस में ज्यादा अतिशयोक्ति नहीं लगी । ज के वैज्ञानिक ने मनुष्य को चन्द्रमा की सैर करा दी । वह एक बार नही, छह छह बार । वहां हवा नही, पानी नहीं, र आप लोग यानि महिलायें करवा चौथ के व्रत के दिन । तब चंद्रमा नही देखेंगी, व्रत नहीं तोड़ेंगी । मां तुम्हीं ाओ कि सूर्य और चन्द्रमा के साथ तुमने इन धार्मिक याकलापों को कैसे और क्यों जोड़ रखा है ?"

ष्णा : तो क्या धार्मिक क्रियाकलाप मैंने बनाये हैं । मेरी दादी भी तो करवा चौथ का व्रत रखती थी, और उनकी मां और दादी ने भी ग्रहण और करवा चौथ को माना । और फिर हमारे पड़ौसी भी तो चांद देख कर ईद मनाते हैं । और इस सदियों पुरानीं संस्कृति को तुम और तुम्हारे पिताजी कैसे समझोंगे ?

लाल : तुम्हें क्रोध जल्दी आ जाता है कृष्णा । हम यह नही कहते कि तुम बिल्कुल गलत हो, मगर इतना जानना होगा कि समय के साथ तुम्हारे कदम नही चल पाये हैं । तीज-त्योहार, व्रत आदि मानव के दैनिक जीवन की एकरसता को दूर कर उसके शरीर और मन के स्वास्थ को ठीक रखते हैं, इस में संदेह नहीं । लेकिन धर्म के भ्रामक पक्ष के बारे में जिद करना गलत है । इसी जिद भी वजह से बड़े बड़े वैज्ञानिकों के साथ बहुत अन्याय हुआ है और उन्हें तकलीफ पहुंचायी गयी है ।

ष्णा : आप भी कमाल की बातें करते हैं । धर्म की वजह से भी किसी को तकलीफ दी जाती है क्या ? मैं नहीं मानती ! मैं तो ....

राज (मां को बीच में टोकते हुए) : मां तुम कितनी भोली हो । मगर मां, पिताजी जो कह रहे हैं, वह ठीक है । जब चार्ल्स डारविन ने कहा कि मनुष्य कपि से ही विकसित हुआ है तो इंग्लैंड भर में उनकी बहुत बेइज्ज़ती हुयी । यह क्यों हुआ ? क्योंकि उन दिनों ईसाई धर्म की पक्की मान्यता थी कि मनुष्य ईश्वरीय शक्ति से पैदा हुआ है । यह धरती ब्रह्मांड का केंद्र है और चांद, सूरज और तारे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं । लेकिन कापरनिकस की इस बात का समर्थन जब महान वैज्ञानिक गैलिलियो ने किया कि दरअसल हमारी पृथ्वी ही सूर्य की परिक्रमा करती है तो उन्हें पकड़कर जेल में डाल दिया गया और यातनायें दी गयी । लेकिन मां, कापरनिकस, गैलीलियो, केप्लर और न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने क्रांतिकारी विचार दिये जिन्होंने हमारे भूगोल और ..

"भूख लगी है मां, खाना दो" अचानक ही इस आवाज ने इस विज्ञान की बातचीत को बीच में ही रोक दिया । यह वाणी नटखट यश की थी ।

यश : भैया, यह तुम भूगोल की क्या बात कर रहे थे ?

स्वराज : मैं दरअसल पृथ्वी की बात करना चाहता था । मैं मां से ....

यश : बस भी करो भैया । तुम हमेशा गलत बात ही करते हो । हमारी टीचर कहती है कि पृथ्वी गोल नहीं, बल्कि संतरे की तरह थोड़ी चपटी है । अब मैं कहता हूँ कि अगर ऐसा है तो भूगोल की जगह भूसंतरा कहना चाहिये, क्यों **(सभी हंसते है)** ।

रेखा का स्वराज के घर में प्रवेश । बहुत कोशिश के बाद भी उसे सौर मंडल के सदस्यों के नाम याद नहीं हो पा रहे थे । उसने सोचा कि स्वराज की मदद ली जाय ।

रेखा : स्वराज, क्या तुम मुझे सौर मंडल के सदस्यों के नाम क्रम से बता सकते हो ?

स्वराज : रेखा, सौर मंडल के सदस्यों को क्रम से याद रखना जरुरी है मगर मैं तुम्हारी परेशानी समझ सकता हूँ । मैंने स्वयं प्रोफेसर राधाकृष्णन से इस बारे में मदद ली थी । उन्होंने मुझे एक वाक्य याद रखने को कहा । वह है

My Very Energetic Mother Always Jumps Superbly Under Normal Pressure

इस वाक्य में हर शब्द का पहला अक्षर एक ग्रह का नाम बतलाता है । सिर्फ यह याद रखना कि यह सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमण करते हैं ।

M से Mercury यानी बुध, V से Venus यानी शुक्र, E से Earth यानी पृथ्वी, M से Mars यानी मंगल, A से Astroids यानी उल्कापिंड (विगत में मौजूद ग्रह के

शिलाखंड) ,J से Jupiter यानी बृहस्पति,S से Saturn यानी शनि,U से Uranus यानी यूरेनस,P से Pluto यानी यम ।

रेखा : स्वराज, तुम्हारे समझाने के तरीके से तो मेरी मुश्किल बहुत आसान हो गयी है । अब मैं सहज ही याद रख सकती हूँ कि सूर्य के बिल्कुल पास बुध है, फिर शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नैप्च्यून और सबसे दूर यम है ....

"यम दूर ही रहे तो अच्छा है भैयाजी" कमरे के कोने से यश की टिपण्णी सुनाई दी जो कि ध्यान से ये बातें सुन रहा था । इस पर वे सब हंस पड़े ।

सौरमंडल में डूबे स्वराज को प्रोफेसर राधाकृष्णन से इस बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करनी थी । इसलिए वह उठ खड़ा हुआ और जूते पहनने लगा । रेखा भी अपनी पुस्तक-कापी समेट कृष्णा आंटी से मिलने किचिन की ओर चल दी । फिर स्वराज तेजी से घर के बाहर चला गया ।

स्वराज को अपने घर की ओर आते प्रो. राधाकृष्णन ने देख लिया था और अपनी पत्नी राजलक्ष्मी से कह दिया था कि एक मसाला डोसा स्वराज के लिये भी तैयार कर दें । प्रोफेसर और उनकी पत्नी को नमस्कार कर दरवाजे के पास ही जूते उतार स्वराज सोफे पर जा बैठा ।

"पहले डोसा खा लो फिर तुम्हारी भौतिकशास्त्र से जुड़ी समस्यायें सुलझायेंगे," कह कर प्रोफेसर, येशु दास द्वारा गाया एक गीत गुनगुनाने लगे ।

स्वराज (डोसा खा लेने के बाद) : सर, आप को पता ही है कि हमारा कॉलेज प्रांतीय विज्ञान प्रदर्शिनी मे भाग ले रहा है । मै सौर मंडल का एक मॉडेल तैयार कर प्रदर्शिनी में रखना चाहता हूं । इसलिये आपसे इस बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना चाहता हूं ।

प्रो. राधाकृष्णन : भई, पहले तुम मुझे वह सब बता दो जो तुम इस बारे में जानते हो ।

स्वराज : ठीक है सर । सूर्य हमारे सौरमंडल का सितारा है, जिससे गिर्द नौ ग्रह यानी बुध से यम तक है । प्लूटो यानी यम की खोज इसी सदी में 1930 में हुयी । प्लूटो के आगे किसी और ग्रह की खोज की कोई विशेष आशा नहीं । यह भी आप ने कहा था कि प्लूटो संभवतः संपूर्ण ग्रह नहीं बल्कि नैप्च्यून का अलग हुआ एक अंग है ।

प्रो. राधाकृष्णन : इन ग्रहों के बारे में कुछ और बताओ । मु याद आ रहा है कि मैने तुम्हें काफ़ी कुछ और बताया था ।

स्वराज : जी, सर । शायद प्लूटो को छोड़ कर शेष सभी ग्र सूर्य के गिर्द अलग अलग गति से मगर एक दिशा में परिक्रमण करते हैं यानि क्लॉक वाइज़ ।

प्रो. राधाकृष्णन (टोकते हुये) : अथवा एंटीक्लॉक वाइज य इस पर निर्भर है कि तुम इन्हें कहां से देख रहे ह कास्मिक प्लेन के नीचे से अथवा ऊपर से ।

स्वराज : जी सर । मुझे याद आ गया । आपने समझा था । यदि हम एक करोड़ो मील लम्बा-चौड़ा मो कागज लें और उसे काल्पनिक रूप से सूर्य बीचों-बीच इस तरह से गुजारें कि ज्यादातर ग्रह इ कागज के करीब रहें । यानी इस प्लेन के करीब र तो सच में कुछ ही ग्रह कागज के ऊपर और नी रहते हैं । इस प्रकार हमने देखा कि समूचा सौ मंडल परिवार इस कॉस्मिक प्लेन पर ही चलता है इसी को हम तलीय भ्रमण कहते हैं । और सर, इ ग्रहों के अधिकतर के उपग्रह भी हैं जैसे हमारी पृथ्व के चारों ओर घूमता चंद्रमा । सिर्फ बुध और शु के उपग्रह नही । मंगल के दो उपग्रह, बृहस्पति 16, शनि के सब से अधिक यानी 17, यूरेनस 5, नेप्च्यून के 3 या 4 तथा प्लूटो का भी एक उपग्र है ।

सर, आप ने यह भी बताया था की बृहस्पति त शनि हमारे सौर मंडल के सबसे विशाल ग्रह हैं तो जाहिर कि इनके जबर्दस्त गुरुत्वाकर्षण के कारण ही इनके उपग्र की संख्या अधिक है ।

प्रो. राधाकृष्णन : शाबास स्वराज । यह सब तुमने याद रख यह बहुत अच्छा है । क्या इन ग्रहों की दूरी सूर्य कितनी है, इस बात का तुम्हें कुछ आभास है ?

स्वराज : (हंसते हुए) जब यही प्रश्न मैंने आप से पिछली बा पूछा था तो आपने कहा था "स्वराज, मुझे प्रिंसिप साहब से मिलने जाना है अतः तुम्हारे शेष प्रश्न बा

में । सिर्फ इतना अंदाज तुम्हें दे सकता हूं कि पृथ्वी से सूर्य की तरफ वायुयान से भी सफर करें तो वहां तक पहुंचने में हमें 15 वर्ष लग जायेंगे । और यहां से चंद्रमा की दूरी में भी 15 दिन तो लग ही जायेंगे"

राधाकृष्णन :(हंसते हुये) हां, ये दूरियां काफी अधिक हैं । यम सूर्य से कुछेक अरब किलोमीटर दूर है । इतनी दूर होने पर भी सूर्य के गुरुत्व से यह घूमता है । लेकिन अगर गणना करें की प्लूटो के परे भी कोई ग्रह हो तो यह दूरी इतनी अधिक आयेगी कि वहां तक सूर्य का गुरुत्व बहुत ही क्षीण हो जायेगा । अतः हमें सच में किसी अतिरिक्त ग्रह की उपस्थिति की आशा नही ।

ज : तो क्या सर हम इस प्रकार की गणना सच में कर सकते हैं कि यम से अगला ग्रह सूर्य से कितनी दूर होना चाहिये ?

राधाकृष्णन : बिल्कुल । बिल्कुल कर सकते हैं । यह दो वैज्ञानिकों जिनके नाम हैं टिटियस (Titius) और बोड (Bod) इनके द्वारा संभव हो पाया है । इसीलिये उनकी गणनाओं पर आधारित नियम को "टिटियस और बोड का नियम" कहा गया है । इसी नियम से मंगल और बृहस्पति के बीच एक और ग्रह होना चाहिये, यह निष्कर्ष निकला और यम की भी खोज हो पाई । इस नियम को सरल तरीके से यूं समझा सकता है कि किन्ही भी दो पड़ोसी ग्रहों की सूर्य से दूरी का अनुपात स्थिर रहता है । इस का अर्थ यह हुआ कि मंगल और पृथ्वी की सूर्य से दूरियों का अनुपात वही है जो कि यम और नेप्च्यून की दूरियों में है । जब इसी अनुपात से तुम यम और सूर्य के बीच की दूरी को गुणा कर दो तो तुम यम से अगले ग्रह की दूरी प्राप्त कर सकते हो । अच्छा स्वराज, शेष बातें हम कल करेंगे क्योंकि अब मुझे तुम्हारी आंटी के साथ कुछ जरुरी खरीदारी के लिये जाना है । न गया तो कल न मुझे और न तुम्हें डोसा मिला पायेगा । समझे ।

प्रोफेसर राधाकृष्णन और स्वराज दोनो खिल खिलाकर हंसते है और विदा लेते है ।

* * *

यश : भैया, एक प्रश्न पूछूं ?

स्वराज : पूछ लो ।

यश : मां कहती है कि पृथ्वी शेष नाग के सिर पर खड़ी है । क्या यह सच है ? क्या शेष नाग इतने बड़े हैं ?

स्वराज : यश, यह बात बिलकुल झूठ है कि यह शेष नाग के मस्तिष्क पर टिकी है या कि बैल के सींग पर टिकी है ।

इसी बीच रेखा घर में प्रवेश करती है । स्वराज उसे बैठने का इशारा कर फिर यश से बातें करने लगता है ।

स्वराज : हमारी पृथ्वी किसी के माथे यां सींग पर नहीं टिकी बल्कि वह न्यूटन के नियम पर टिकी है । रेखा, क्या तुम यश को गुरुत्वाकर्षण का नियम सरल तरीके से समझा सकती हो ? तुम्हें तो पता है कि इसके सिर में दिमाग की जगह करीब करीब खाली ही है । मैं हाथ मुंह धोकर अभी आया ।

रेखा : (मुस्कराकर) ठीक है, देखो यश, तुमने न्यूटन का नाम जरुर सुना होगा । कहते है कि वे सेब के पेड़ के नीचे बैठे थे कि एक सेब गिरा और उनके सिर पर आ गया । वे सोचने लगे कि यह सेब नीचे ही क्यों गिरा, ऊपर आकाश में क्यों नही चला गया ?

यश : हां दीदी, आकाश में क्यों नही चला गया ? वहां देवता रहते हैं, वे खाकर खुश होते और वरदान देते ।

रेखा : (बनावटी क्रोध में) तुम्हें यह कहानी सुननी है कि नहीं ?

यश : हां, हां दीदी, सुननी है, सुननी है ।

रेखा : काफी विचार करने पर उन्हे पता चला कि इस दुनियां या ब्रह्मांड में हर चीज या हरेक पिंड, हर दूसरे पिंड को आकर्षित करता है यानी खींचता है । इस खिंचाव में जो बल होता है, वह पिंडों के वजन और उनके बीच की दूरी पर निर्भर करता है । ज्यादा वजन, ज्यादा खिंचाव । ज्यादा दूरी कम खिंचाव । इसी को नियम रुप में उन्होंने इस प्रकार कहा कि

यह बल दोनों पिंडो के वजन के गुणा के समानुपाती और उनकी बीच की दूरी के वर्ग के विलोमानुपाती होता है । कुछ समझे ?

यश : कुछ कुछ तो समझा हूं मगर उस सेब के बारे में आगे क्या हुआ ?

रेखा : हां यह बात सन 1665 की है । न्यूटन ने सेब की घटना इंग्लैंड के राजा चार्ल्स तृतीय को लिख भेजी और अनुसंधान के लिये सहायता मांगी । राजा ने यही समझा कि न्यूटन सेबों की पैदावार बढाने के लिये रिसर्च करना चाहते हैं, सो न्यूटन को आर्थिक सहायता मिल गई ।

यश, रेखा और हाथ मुंह धोकर वापस आ रहा स्वराज सभी इस बात पर हंसते हैं ।

* * *

अगला दिन । रेखा और स्वराज को कुछ राहत, क्योंकि यश बाहर खेलने गया है । रेखा स्वराज से नाभिकीय संलयन के बारे में कुछ पूछना चाहती थी, इसीलिये रसायनिकी की पुस्तक लेकर आई थी । मगर उसे थोड़ी निराशा हुयी जब स्वराज ने कहा कि इस बारे में उसे कुछ ठीक से पता नहीं । इस बीच सौभाग्य से श्री. नंदलाल अपनी प्रयोगशाला से जल्दी घर आ जाते हैं और रेखा के निवेदन पर इस बारे में समझाते हैं ।

नंदलाल : देखो बच्चों, इस सदी के छठे दशक में वैज्ञानिकों ने इस ओर अनुसंधान शुरु किये थे । यदि किसी प्रकार हाइड्रोजन परमाणु के नाभिकं आपस में एक दूसरे में संलयित हो जायें तो हीलियम बनेगी और ऊर्जा भी पैदा होगी । ऊर्जा की यह मात्रा काफी विशाल होती है । परंतु प्रश्न तो यह है कि हाइड्रोजन के नाभिकों को इतना पास कैसे लायें कि वे गुंथ जायें । इस मुश्किल का कारण यह है कि हाइड्रोजन के नाभिकों में प्रोटोन होते हैं और ये प्रोटोन धनात्मक आवेश के कारण एक दूसरे को दूर ढ़केलते हैं जैसे कि चुंबक के समान ध्रुवों में होता है । अगर इन्हें फ्यूज करना है तो करोड़ों डिग्री तापमान चाहिये क्योंकि इस ऊंचे तापमान पर ये नाभिक इतनी गति पकड़ लेते हैं कि विकर्षण बल इस गति के सामने क्षीण हो जाता है । हमारे स में भी यही संलयन प्रक्रिया काम करती है । य कारण है कि लाखों वर्षों से सूर्य से हमें गर्मी ओ प्रकाश मिल रहा है । इस गर्मी और प्रकाश से पृ पर जीवन की क्रिया निर्बाध रुप से चल रही है ओ लाखों लाख वर्ष और भी चलती रहेगी ।

रेखा : लेकिन अंकल, एक दिन तो ऐसा आयेगा ही कि स के गोले में मौजूद हाइड्रोजन खतम हो जायेगी ओ फिर सब ठप हो जायेगा ।

नन्दलाल : यह सही है । तब कुछ समय ऊर्जा उत्पादन त तो रहेगा । मगर संलयन न होने के कारण ताप व होने से सूर्य का फैलाव कम हो जायेगा । घन बढ़ेगा और इतना अधिक हो जायेगा कि घर्षण जबर्दस्त ताप पैदा होगा और यह पहले से अधिक होगा । इस ताप में हीलियम के तं नाभिक संलयित होकर कार्बन के नाभिक बनाये जिस में और भी अधिक ऊर्जा पैदा होगी । इ प्रकार बीच बीच में यह भट्टी बंद रहेगी । फिर चा होगी और फिर अधिक भारी यानि अधिक परमा संख्या के नाभिक बनते रहेंगे और लौह नाभि तक यह क्रिया जारी रह सकती है । अलग अल भार के नाभिकों के कारण सूर्य में प्याज के तरह पर बन जायेंगी और फिर एक जबर्दस्त विस्फोट सकता है । इस विस्फोट में हाइड्रोजन जैसे हल तत्व दूर दूर बिखर सकते हैं जब कि भारी तत्व सू से बहुत अधिक दूर नही जा पायेंगे । भई, यह तु लोग क्या कर रहे हो, केमिस्ट्री से बात शुरु की अं मुझे भौतिकी में ले आये । फिर मैं किसी विशे काम से आज जल्दी घर आया था और तुम लो मुझे बातों में ले बैठे । यह क्षेत्र प्रोफेसर राधाकृष्ण का है ।

* * *

रेखा ने स्वरज को मना लिया था कि विज्ञ प्रदर्शिनी के अपने प्रोजेक्ट में वह रेखा को भी ले ले । लेवि मॉडेल बनाने और पोस्टर तैयार करने से पहले उन्हें मह की एक और सूचना प्राप्त करनी थी, वह यह कि सौर मंड

ा कैसे । इस सूचना को प्राप्त करने वे प्रोफेसर ाकृष्णन के पास गये ।

राधाकृष्णन : देखो रेखा और स्वराज, आज यह जो प्रश्न लेकर तुम आये हो कि सौर मंडल की उत्पत्ति कैसे हुयी, यही प्रश्न सच में बहुत टेढा है । इस बारे में यूं तो कई अटकलें लगाई जा चुकी हैं मगर वैज्ञानिक जगत में आप का वही सिद्धांत स्वीकार किया जायेगा जो कि सौर मंडल से जुड़े तथ्यों को समझा सके । क्या तुम इनमें महत्वपूर्ण तथ्य मेरे सामने रख सकते हो ?

ाज : सर, सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मेरी नजर में ये हैं कि सौर मंडल टिटियस एवं बोड के नियम के अनुसार आचरण करता है ।

सौर मंडल के ग्रह एक ही कॉस्मिक प्लेन पर भ्रमण करते हैं यानी इन का भ्रमण तलीय भ्रमण है ।

ये सभी (प्लूटो को छोड) उसी एक दिशा में चलते है जिस दिशा में सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है ।

सूर्य के पास जो ग्रह हैं वे छोटे है जैसे कि बुध, शुक्र और पृथ्वी । और फिर ये साइज में बड़े है जैसे कि बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नैप्च्यून ।

सूर्य के करीबी ग्रह अधिक घनत्व वाले हैं यानी चट्टानी किस्म के हैं जब कि दूर वाले ग्रह कोमल किस्म के या बर्फीले किस्म के हैं ।

कुछ ग्रहों अथवा उनके चंद्रों (उपग्रहों) पर किसी प्रकार का वातावरण नही तथा गड्ढे भी पाये जाते हैं । जैसे कि बुध और हमारे चंद्रमा पर ।

सर, मेरे विचार में येही कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं ।

राधाकृष्णन : बहुत खूब । स्वराज, ये तथ्य आज की हमारी चर्चा के लिये बहुत ही उपयोगी होंगे । सबसे पहला सिद्धांत फ्रांस के बुफॉ महोदय ने सन १७४० में दिया था । वे समझते थे कि सौर मंडल की उत्पत्ति हमारे सूर्य से ही हुयी । उनका कहना था कि किसी और सूर्य या धुमकेतु से टकराने के बाद हमारे सूर्य का कुछ भाग यत्र तत्र बिखर गया और सौरमंडल के ग्रह तथा उपग्रह इन्हीं बिखरे भागों से बने । रेखा, क्या तुम्हें यह सिद्धांत तर्क संगत लगता है ?

रेखा : नही सर, खास तौर पर इसलिये कि पहले तो हमारी आकाश गंगा में भी जो सूर्य हैं, वे एक दूसरे से करोड़ो करोंड़ो मील दूर है तो टकराहट की उपरोक्त संभावना बहुत ही कम है । दूसरी यह की इस टकराहट से जो बिखराव होगा तो वह एक ही प्लेन में नही होगा परंतु हमारे ग्रह एक ही प्लेन में परिक्रमा करते है ।

प्रो. राधाकृष्णन : बहुत अच्छे । तुम ने सही कहा । और भी कारण हैं जिन की वजह से वैज्ञानिक इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सके ।

इसके बाद जर्मन दार्शनिक इमानुएल काँट ने एक परिकल्पना दी । उन्होंने कहा कि विगत में तारक विस्फोट से उत्पन्न गैस एवं धूल के बादलों से हमारे सूर्य का जन्म हुआ । शेष गैस और धूल कणों की नीहारिका (नेबुला) जो कि काफी विस्तार में फैली हुयी थी, उस से ग्रहों तथा उपग्रहों का जन्म हुआ । यद्यपि यह नीहारिका गैस और धूल का बादल थी मगर यह बादल कहीं अधिक घना तो कहीं विरल था । घने क्षेत्रों की ओर धीरे धीरे अन्य कण तथा अणु जमा होते गये और ग्रह उपग्रह बने ।

फिर 1796 में फ्रेंच गणितज्ञ लाप्लेस ने बताया कि आरंभ में एक नीहारिका थी और अपने अक्ष पर घूम रही थी । ठंडे होने के बाद वह संकुचित हुयी और अधिक वेग से घूमने लगी और चपटी हो गयी । अत्यधिक वेग और चपटापन बढने के बाद कुछ द्रव्य केन्द्रीय भाग से अलग छिटक गया । लाप्लेस ने कहा कि केन्द्रीय भाग से सूर्य बना और छिटके हुये द्रव्य से पहले गोल गोल पहिये बने जो कि तरल थे । बाद में इन्हीं पहियों से ग्रह बने । कुछ और छिटके द्रव्य से उपग्रह बने ।

बच्चों, इन सभी सिद्धांतों में कुछ न कुछ कमियां तो है और समय के साथ और सूचना इकट्ठी होने पर ज्यादा अच्छे सिद्धांत आयेंगे, ऐसी आशा करनी चाहिये ।

स्वराज : कैसी सूचना सर ?

(शेष पृष्ठ 60 पर)

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद तकनीक में अभिनव परिवर्तन

प्रो. गिरजेश गोविल
रासायनिक भौतिकी वर्ग
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
कोलाबा, बम्बई 400 005

1991 का रसायन शास्त्र का नोबेल पुरस्कार स्विस निवासी तथा ज्यूरिक के इ. टी. एच. नामक संस्थान में भौतिकी रसायन के प्राध्यापक, प्रोफेसर रिचर्ड अर्नस्ट को दिया गया है । यह पुरस्कार उन्हें नाभिकीय चुम्बकीय अनुनाद (एन. एम. आर.) में उनके द्वारा विकसित तकनीकों के कारण आये अभिनव परिवर्तनों हेतु प्रदान किया गया ।

एन. एम. आर. का आविष्कार 1946 में फेलिक्स ब्लाक तथा एडवर्ड परसल नामक दो अमरीकी वैज्ञानिकों ने किया था । इस तकनीक में नाभिकों के चुम्बकीय गुणों का उपयोग किया जाता है । जिन नाभिकों में चुम्बकीय गुण हैं उनमें एन. एम. आर. के उपयोगों के मापदण्ड से ^{1}H, ^{13}C तथा ^{31}P प्रमुख हैं । ^{16}O और ^{12}C में चुम्बकीय गुण नहीं है । अतः इनके एन. एम. आर. वर्णपटल का प्रश्न ही नहीं उठता । एक प्रबल चुम्बकीय क्षेत्र में रखने से उपरोक्त नाभिकों के चुम्बकीय ऊर्जा-स्तर अपभ्रष्ट (नॉन डिजेनेरेट) हो जाते हैं । इन ऊर्जा-स्तरों के अन्तर को मापना ही एन. एम. आर. पद्धति का उद्देश्य है । इन प्रयोगों में 1 से 15 टेस्ला की शक्ति वाले चुम्बक उपयोग में लाये जाते हैं । इन चुम्बकीय क्षेत्रों में ऊर्जा-स्तरों का अन्तर रेडियो आवृत्ति परास में आता है । एन. एम. आर. के प्रयोगों में जिस पद्धति का आविष्कार ब्लाक व परसल ने किया उसे अनवरत तरंग (सी. डब्लू.) तकनीक के नाम से जाना जाता है । जिस वस्तु का अध्ययन करना हो उसको चुम्बकीय क्षेत्र में रखकर उसे रेडियो किरणों से उत्तेजित करने का प्रयास किया जाता है । रेडियो किरणों की आवृत्ति का धीरे धीरे परिवर्तन करने पर जब ऊर्जा-स्तरों का अन्तर और रेडियो आवृत्ति से सम्बन्धित ऊर्जा का माप बराबर हो जाता है तो इस परिस्थिति को अनुनाद परिस्थिति कहते है । यदि वर्णपटल में एक से अधिक रेखायें हों तो पूरे वर्णपटल को अंकित करने में 15 मिनट से एक घंटे तक का समय लग जाता है । अनुनाद

परिचय

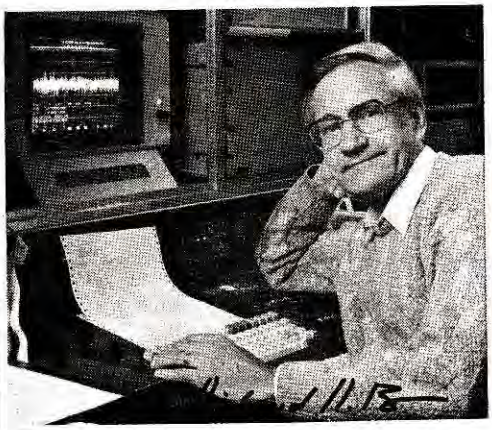

प्रो. रिचर्ड अर्नस्ट

प्रो. अर्नस्ट का जन्म 1933 में स्विटज़रलैंड में हुआ था । 1962 में उन्होंने ए. टी. एच. से पी. एच डी. की उपाधि प्राप्त की । उसके पश्चात 5 साल तक वेरियन एसोसिएट नामक एन. एम. आर. कम्पनी में शोध कार्य किया । यहीं पर उन्होंने एफ. टी. एन. एम. आर. पर शुरु के प्रयोग किये । 1967 में वे अपने पुराने संस्थान में वापस आ गये । विज्ञान के अतिरिक्त डा. अर्नस्ट को चित्रकला में भी रूचि है । डा. अर्नस्ट के भारत के साथ काफी मधुर व प्रबल सम्बन्ध रहे हैं । भारत में 1984 तथा 1986 में वे शीतकालीन स्कूलों में प्रमुख वक्ता के रूप में भाग ले चुके हैं । प्रो. अनिल कुमार, जो आजकल बैंगलोर में इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साईंस में प्राध्यापक हैं, इ. टी. एच. में उनके प्रमुख सहयोगी के रूप में कार्य कर चुके है । इसके अतिरिक्त भारत के दो युवा वैज्ञानिक, डा. रामकृष्ण होसूर तथा डा. के. वी. आर. चारी भी उनके साथ ज्यूरिक में कार्य कर चुके हैं । 1988 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने उन्हें विदेशी फेलोशिप से सम्मानित किया ।

वृत्ति, चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति के समानुपाती होती है । के अतिरिक्त, यह नाभिकीय गुणों पर भी निर्भर करती है ।

एन. एम. आर. के आविष्कार के लिए जब ब्लाक परसल को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया, उस य इस पद्धति के द्वारा नाभिकीय गुणों को मापना सबसे वपूर्ण कार्य समझा जाता था । इसके अतिरिक्त, पृथ्वी के ाकीय शक्ति को मापने में भी इस तकनीक का प्रयोग ा जाने लगा था । अगले कुछ वर्षों में कई वैज्ञानिकों ह दर्शाया कि अणुओं में नाभिकों के आसपास में ामान इलेक्ट्रान तथा अन्य नाभिकायें भी एन. एम. आर. तों पर प्रभाव डालती हैं । 1950 व 1955 के मध्य यनिक शिफ्ट,संयोजन (कपलिंग) नियतांक और विश्रांति आदि एन. एम. आर. प्राचलों और इनके आण्विक ना के सम्बन्धों का विकास हुआ । इसके साथ ही एन. आर. ने रासायनिकी के क्षेत्र में प्रवेश किया ।

1959 में जब मैने एन. एम. आर. की दुनिया में ा किया तब यह तकनीक कार्बनिक रसायन का एक त्र अंग बन चुकी थी । परन्तु तब शायद ही किसी ने कल्पना की होगी कि एक दिन यह तकनीक विज्ञान तथा चिकित्सा शास्त्र में भी अभूतपूर्व योगदान । वास्तव में एन. एम. आर. तकनीक की कुछ समस्यायें । प्रो. अर्नस्ट ने अपनी तकनीकों से इन्हीं समस्याओं का धान करके एन. एम. आर. को एक नई दिशा प्रदान की । अर्नस्ट द्वारा विकसित तकनीकों ने अणुओं की मीय संरचना (विशेषकर प्रोटीन तथा न्यूक्लिक एसिड जटिल अणु), जीवित कोशिकाओं की रासायनिक क्रिया तथा मनुष्य के विभिन्न अंगों की संरचना तथा रोग न में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

नोबेल पुरस्कार समिति ने प्रो. अर्नस्ट के जिन तीन ानों की विशेष चर्चा की है, उसमें स्पन्दन एफ. टी. ड फोरियर ट्रांस्फोर्म) एन. एम. आर. का आविष्कार है । इस पद्धति ने एन. एम. आर. की सुग्राहकता में कई वृद्धि कर दी है । एन्डरसन के साथ प्रकाशित 1966 के उल्लेखनीय शोध कार्य के फलस्वरूप 3-4 वर्षों के ही एन. एम. आर. स्पेक्ट्रोमीटर बनाने वाली सभी रिक कम्पनियों ने सी. डबल्यू तकनीक छोड़कर एफ. टी. तकनीक अपना ली । एफ. टी. पद्धति में एक तीव्र रेडियो आवृत्ति स्पन्दन (जिसकी आवृत्ति अनुनाद आवृत्ति से कुछ ही अन्तर पर होती है) द्वारा अणुओं में विद्यमान एक तरह की सभी नाभिकों को एक साथ उत्तेजित किया जाता है । धीरे धीरे अणुओं का उत्तेजित समूह अपनी विश्रांत अवस्था में वापस आता है । इस समय में उत्तेजित अणुओं के समूह जो संकेत देते हैं उसे समय के साथ मापा जाता है । समय प्रांत में लिये गये इस वर्णपटल का एफ. टी., सी. डब्ल्यू वर्णपटल के समान होता है । सी. डब्ल्यू की तुलना में एफ. टी. तकनीक से वर्णपटल लेने में कुछ सेकेन्ड ही लगते हैं । कई वर्णपटल का संकलन करके एन. एम. आर. की सुग्राहकता बढ़ाई जाती है ।

एफ. टी. द्वारा प्राप्त अधिक सुग्राहकता के प्रभाव ने एन. एम. आर. के उपयोग में नई क्रान्ति ला दी है । वास्तव में एन. एम. आर. की उपयोगिता का इतिहास इसकी सुग्राहकता से ही जुड़ा है (चित्र-आवरण पृष्ठ पर) । सी. डब्ल्यू. तकनीक से तो अधिकतर हाइड्रोजन परमाणु का ही उपयोग हो पाता था । एफ. टी. तकनीक द्वारा ^{13}C (जिसकी प्राकृतिक बाहुल्यता केवल 1% है) का एन. एम. आर. वर्णपटल बड़ी सरलता से अंकित किया जा सकता है । इस प्रकार कार्बन संरचना में एन. एम. आर. एक महत्वपूर्ण तकनीक बन गई है । इसके अतिरिक्त आवर्त सारणी के कई ऐसे परमाणु जिनका अपनी कम सुग्राहकता के कारण सी. डब्ल्यू. तकनीक से अध्ययन कठिन था, एफ. टी. तकनीक के कारण अकार्बनिक रसायन में एक महत्वपूर्ण योगदान देने में समर्थ हो गये हैं ।

सी. डब्ल्यू. तकनीक में अणु समूह का उत्तेजन तथा संकेत संग्रहण एक साथ किया जाता है, जबकि एफ. टी. तकनीक में यह अलग अलग समय पर होता है । 1971 में जीनर नामक वैज्ञानिक ने अपनी एक विज्ञान वार्ता में सुझाव रखा कि इसका उपयोग संकेत संग्रहण से पहले एक से अधिक रेडियो स्पन्दन द्वारा कुछ नये ढंग के एन. एम. आर. प्रयोगों में कर सकते हैं । प्रो. अर्नस्ट की प्रयोगशाला में वह सभी सुविधायें थीं जिससे इस सुझाव को यथार्थता प्रदान की जा सकती थी । परंतु प्रो. अर्नस्ट एक महान वैज्ञानिक होने के साथ साथ आदर्शवादी भी हैं । किसी दूसरे के

सुझाव को वह यथार्थता में बदलें - यह उन्हें अच्छा नहीं लगा । 3-4 वर्षों बाद जब यह निश्चित हो गया कि डा. जीनर का स्वयं इस सुझाव पर प्रयोग करने का इरादा नही है, तभी उन्होने अपने सहयोगियों को इस दिशा में कार्य करने की सलाह दी । 1974 के बाद उनकी प्रयोगशाला में जिन पद्धतियों को जन्म दिया उन्हें हम 2-D, 3-D, 4-D एफ.टी. एन.एम.आर.के नाम से जानते हैं ।

प्रोटीन तथा न्यूक्लिक एसिड जैसे विशाल अणुओं की संरचना में एक कठिनाई यह थी कि इनके हजारों एन. आम. आर. संकेत वर्णपटल परिसर के कुछ विशेष भाग में ही आते है । इससे विभेदन तथा निर्देशन सम्बन्धी कठिनाइयां सामने आती हैं । वर्णपटल को दो या दो से अधिक दिशाओं में परिक्षेपित करके अब इन कठिनाइयों पर नियन्त्रण पा लिया गया है । इन आविष्कारों के कारण प्रोटीन तथा न्यूक्लिक एसिड जैसे अणुओं की संरचना ज्ञात करने में एन. एम. आर. एक बहुमूल्य तकनीक सिद्ध हो गई है ।

डा. अर्नस्ट के तीसरे अनुसंधान का सम्बन्ध एक अलग दिशा में था । 1970 के आसपास, कुछ वैज्ञानिकों ने शोध निबन्ध प्रकाशित किये जिसमें उन्होनें यह दर्शाया कि एन. एम. आर. का उपयोग वस्तुओं की आन्तरिक संरचनाओं के चित्र बनाने में किया जा सकता है । मानव शरीर के चित्रों में इस पद्धति का विकास विशेष महत्वपूर्ण था क्यों कि इसका उपयोग रोग निदान में किया जा सकता है । प्रो. अर्नस्ट तथा प्रो. अनिल कुमार ने एक विधि का विकास किया जो एन. एम. आर. द्वारा मानव शरीर के चित्र लेने में सबसे उपयुक्त सिद्ध हुई ।

* * *

(पृष्ट 57 का शेष भाग)

प्रो. राधाकृष्णन : तुम्हें पता है कि 1961 में जब पहले अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन ने ऊपर अंतरिक्ष से पृथ्वी को देखा और इसके चक्कर लगाये, संसार के वैज्ञानिकों के पास सिर्फ दूरबीनें ही थीं जिनसे वे ग्रहों, उपग्रहों का अध्ययन करते रहे । फिर रुस और अमरीका ने अपने अंतरिक्ष यान चांद पर तो भेजे ही, मंगल और शुक्र के अध्ययन के लिये वैनेरा-4 से वेनेरा-10 (1967-1975) मैरीनर-2, मैरीनर-7 (1962-1971) भेजे अमरीका ने 1973 में मैरीनर-10 को बुध अध्ययन के लिये भेजा । 1975 में रुस वाइकिंग-1 तथा वाइकिंग-2 मंगल के अध्ययन लिये भेजे । इस के बाद अगस्त-सितंबर 77 बृहस्पति तथा शनि के ओर वॉयेजर-1 त वॉयेजर-2 भेजे गये । इन यानों ने हमारे ज्ञान बहुत वृद्धि की है और इस नये ज्ञान से नये सिद्ध का प्रतिपादन होगा ही । फिर भी, जो भी सिद्ध आयेंगे, सौर मंडल की उत्पत्ति नीहारिकाओं से हु इस तथ्य को मेरे विचार से नकार नहीं पायेंगे ।

* * *

३० अक्तूबर को डॉ. होमी जहांगीर भाभा जन्मदिन पर लगी प्रदर्शिनी में स्वराज और रेखा द्वारा प्रद सौर मंडल का मॉडल आकर्षण का केंद्र था । फिर प्र पुरस्कार की घोषणा और तालियों की गड़गड़ाट । प्रोफे राधाकृष्णन का अभिमान भरी शाबासी । और नन्दलाल त कृष्णा जी की स्नेहसिक्त निगाहों ने स्वराज तथा रेखा को म ढेर से आशीर्वीद दे डाले । * * *

"वैज्ञानिक" के एजेन्टों से निवेदन

" वैज्ञानिक अध्ययन हेतु पत्रिका है; इसमें केवल पढ़ने के लिए सामग्री नहीं के बराबर होती है । अत:, एजेन्टों से निवेदन है कि अपनी आवश्यकतानुसार ही इसकी प्रतियां मंगाएं । "वैज्ञानिक " की सामग्री कभी पुरानी नहीं होती है । अत:, बिकी हुई प्रतियों को वापस लेने की कोई व्यवस्था नहीं है ।

— संपादक

ो. ए. आर. सी. में :

उच्च सुरक्षा इलेक्ट्रानिक ताले का विकास :

भाभा प. अ. के. के इलेक्ट्रानिक प्रणाली प्रभाग ने ी हाल में एक उच्च सुरक्षा वाले इलेक्ट्रानिक ताले का ास किया है जो 'दो व्यक्ति नियम' पर आधारित है । में नियंत्रक अधिकारी नौ अंकीय मास्टर कोड में से दो अंकों वाली संख्या (नम्बर कोड) बनाकर दो अन्य कृत व्यक्तियों को बताता है । साथ ही दोनो व्यक्तियों अपना अपना निजी कोड होता है । ताला खोलने के लिए पहले अपना निजी कोड एक पूर्व निर्धारित क्रम एवं य अंतराल में ही प्रयुक्त करना होता है । 'नम्बर कोड' को त्रक अधिकारी आवश्यकता पड़ने पर अपने मास्टर का ग करके लगभग एक लाख तरीके से बदल सकता है ाका पता करना किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए आसान नही है ।

इस सुरक्षा ताले के तीन घटक होते हैं, (i) क्रोप्रोसेसर पर आधारित नियंत्रक, (ii) की-पैड, और (iii) त प्रचालित लॉकिंग युक्ति । इस प्रणाली की विशेषता है कि 'की-बोर्ड' पूरी तरह से मुख्य उपकरण से निकाला सकता है तथा सुरक्षा की दृष्टि से अलग से लेजाया जा ता है । जब ताला खोलना होता है तो इसी 'की-बोर्ड' से रण को बिजली दी जाती है । यह निकाय इसलिए भी क सुरक्षित है क्योंकि इसकी यांत्रिकी एवं अप्राप्य मी सुविधा के अलावा इसकी भौतिक एवं विद्युत पहुंच न्त सीमित है । इस तरह यह 'फेल-सेफ' भी है क्यों कि त चले जानेपर भी सुरक्षित रहता है ।

इस यंत्र का उपयोग खास तौर पर अत्यंत गोपनीय ण की जगह, बैंक तथा उन सुरक्षा वाहनों में, जो अत्यंत पूर्ण दस्तावेज़, पैसा आदि ले जाते हैं, में किया जा ा है । इस सुरक्षा प्रणाली की तकनीकी का व्यापारिक दन हेतु अभी हाल में हस्तान्तरण चन्डीगढ़ की एक ोनिक्स इन्स्ट्रूमेंट्स नामक कपंनी को किया गया है ।

* * *

2. सीजीयम - 137 तथा स्ट्रोन्शियम - 90 की प्रतिप्राप्ति

नाभिकीय विखंडन के दौरान बनने वाले लम्बे अर्द्धजीवन काल वाले रेडियोसमस्थानिक जैसे सीजियम-137 (Cs-137) तथा स्ट्रोन्शियम-90 (Sr-90) के कई क्षेत्रोंमें विभिन्न अनुप्रयोग होते हैं ।

आजकल रेडियो समस्थानिक पृथक्कीकरण हेतु अकार्बनिक विनिमायक का प्रयोग बढ़ता जा रहा । भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के आइसोटोप प्रभाग ने विखंडन उत्पाद पृथक्कीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत कई अकार्बनिक विनिमायकों जिनमें हाइड्रस-ऑक्साइड, हेटरोपौली एसिड लवण, जिर्कोनियम, टाइटेनियम, एन्टीमनी तथा टिन जैसे बहुसंयोजक धातुओं के अधुलनशील लवण इत्यादि शामिल हैं, का रेडियो समस्थानिक पृथक्कीकरण हेतु मूल्यांकन किया है । हाल ही में इस प्रभाग ने जिर्कोनियम एंटीमोनेट (ZrA) तैयार किया और इसके उपयोग से Cs-137 तथा Sr-90 के क्रमिक पृथक्कीकरण हेतु एक विधि विकसित की है । इस विधि में विखंडन उत्पाद घोल को अमोनियम फोस्पोमौलीब्डेड में से गुजारा जाता है जहां पर Cs-137 अवशोषित हो जाता है । इसे फिर अमोनियम नाइट्रेट से एल्यूट (आयन विनिमायक स्तम्भ से चयनात्मक रुप से निकालना) कर देते हैं । बहिःस्राव तथा प्रक्षालन द्रव को ZrA के ऊपर से प्रवाहित किया जाता है । अब इस ZrA पर अवशोषित सीरियम तथा सोडियम को एल्यूट करके Sr-90 को सिल्वर नाईट्रेट तथा नाइट्रिक अम्ल के मिश्रण द्वारा निकाल दिया जाता है ।

इस विधि को इन रेडियो समस्थानिकों के नियमित पृथक्कीकरण हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है ।

डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल

* * *

अन्य विज्ञान समाचार

1. 'चतुर पदार्थों' का चमत्कार

धूप में गहरे रंग ले लेने वाले चश्मे अब पुरानी बात हो गये हैं । ऐसे कांच बनाने की कोशिश हो रही है जो रसायनों के लिये भी प्रतिक्रिया दिखायें । इसी तरह के संवेदनशील तथा विशिष्ट प्रतिक्रिया दिखाने वाले अनेक पदार्थोंके निर्माण का प्रयास किया जा रहा है । ये 'चतुर पदार्थ' तरल, मिश्रधातु कांच या प्लास्टिक हैं जो संवेदनशील हैं तथा अपने वातावरण के अनुसार विशिष्ट प्रतिक्रिया दर्शाते हैं । इस प्रकार का सबसे पहला 'चतुर पदार्थ' अमरीका की नौसैनिक शस्त्र प्रयोगशाला में 1962 में बनाया गया था जिसे 'निटीनाल' के नाम से जाना जाता है । यह टिटैनियम और निकेल का मिश्र है जो कृत्रिम उपग्रहों के एन्टीना बनाने में इस्तेमाल किया जाता है । सूर्य के ताप के अनुसार ये एन्टीना स्वतः खुलते और बंद हो जाते हैं ।

इस तरह के पदार्थों के बड़े चमत्कारी उपयोग हो सकते हैं । भूमिगत सुरंगों में लगे ये पदार्थ कंक्रीट में सूक्ष्म दरार पड़ते ही संकेत देकर सुरंग फटने के पहले ही सावधान कर देंगे । वायुयान की सतह पर लगी 'फाइबर आप्टिक' की त्वचा उसके आकार में होनेवाले अदृश्य परिवर्तनों पर निगरानी रखकर पायलट को समय रहते सावधान कर देगी । बहुत पुराने पुलों पर नजर रखने के लिये 'फाइबर-आप्टिक' का प्रयोग होने भी लगा है ।

'पीजोइलेक्ट्रिक' एक ऐसा ही पदार्थ है जो कंपन को दबा देता है । मोटरगाड़ियों पनडुबिबयों, पुलों तथा उपग्रहों में कंपन रोकनें में इसे प्रयोग किया जा सकता है । पीजोइलेक्ट्रिक से भरे वाल-पेपर ध्वनि अवरोध कर सकते हैं । कुछ ऐसे तरल पदार्थ जो तरल से करीब करीब ठोस, फिर तरल रूपों में परिवर्तित होते रहते हैं, आघात-अवशोषक (शॉक एब्जार्बर) में भरे जा सकते हैं । सड़क की ऊंच-नीच के अनुसार ये पदार्थ रूप बदलकर आरामदेह यात्रा करा सकेंगे । इन पदार्थों से भरी नींव वाली इमारतें भूकम्प के झटकों में स्थायित्व दे सकेंगी । सड़कों पर ऐसे पदार्थ की परतें लगाई जा सकेंगी जो रंग बदलकर फिसलन से सावधान कर सकें । ऐसी चिमनी बनाने का प्रयास है जो सीमा से अधिक प्रदूषण होने पर रंग बदल ले । पदार्थ इंजीनियर ड काउल्टर के अनुसार प्रकृति की नकल करने का प्रायस वि जा रहा है ।

इन प्रयासों का फलीभूत होना पदार्थ विज्ञान चमत्कारी कदम होगा । * *

2. हड्डी प्रतिरोपण के लिए विकल्प :

हड्डियों के प्रतिरोपण के लिए पेरिस स्थित कं 'इनोटेब' कोरल बेचती है जिसका नाम है 'ब्लाकोरल' । पेराइट्स नामक कोरल से प्राप्त किया जाता है आवश्यकता के अनुसार कोरल की अन्य उपयुक्त प्रजाति चयन किया जा सकता है । परंतु हड्डियों के जोड़ों के ि इनका प्रयोग संभव नहीं है क्योंकि ये आसानी से टूट बिखर जाते हैं । दूसरी ओर कुछ कोरल एनामेल : टिटैनियम से भी अधिक मजबूत होते हैं और उपयोगी र में नहीं ढाले जा सकते ।

जैव-तकनीकी कंपनियां बड़ी व्यग्रता से हड्डियों वृद्धि के लिये उत्तरदायी घटकों की जानकारी पाने में लग । अमरीका की 'क्रिएटिव बायोमालीक्यूल कंपनी'ने घटकों के उत्पादन की एक विधि स्थापित कर ली है जि निकट भविष्य में कृत्रिम पदार्थों की आवश्यकता नहीं जायेगी । * *

3. घड़ी की नजर, दिल के हाल पर :

हाथ में बंधी घड़ी समय के साथ साथ नाड़ी की और रक्त-दाब भी बताती है । केसियो बी पी-१०० घड़ी महीने के दैनिक रक्त-दाब के आंकड़ों को अपनी स्मृति संचित कर सकती है । तीन हफ्तों के रक्त-दाब आंकड़ों ये ग्राफ के रूप में भी दर्शा सकती है । जब सीमा से अि दाब हो तब डायल पर एक मोटी लाइन चमकने लगती ह घड़ी की ऊपरी सतह पर लगे संवेदक उंगलियों के सिरे नाड़ी और रक्त-दाब के आंकड़े नोट कर लेते हैं । * *

प्रस्तुति : **डॉ. दुर्गा प्रसाद प**

मक : विज्ञान की दृष्टि में

नमक की महत्ता सर्वविदित है । हजारों वर्षों से यह ारे आहार, हमारे इतिहास, हमारी भाषा से गहन रूप से ड़ा हुआ है । रोमन विद्वान प्लीनी ने यहां तक कहा है की ायद ही नमक के बिना कहीं जीवन संभव हो" प्राचीन रोम नमक इतना मूल्यवान था कि सम्राट सीज़र के सिपाहियों यह वेतन के रूप में दिया जाता था, जिसे सेलेरियम alarium) कहा जाता था । इसी से "सैलरी" यानी तन" शब्द का आर्विभाव हुआ । ईसा मसीह ने अपने देशों में आस्थावान लोगों के लिए कहा कि "यी आर द ल्ट ऑफ द अर्थ" अर्थात " आप इस दुनिया के उत्कृष्ट हैं ।" दुनिया की सभी भाषाओं में नमक या साल्ट शब्द प्रयोग मुहावरों में किया जाता रहा है । हिंदी में 'नमक म', 'नमक - हलाल', 'नमक अदा करना', जले पर नमक ड़कना' आदि बहुत प्रचलित हैं । प्राचीन ग्रीस में गुलामों लिए 'नॉट वर्थ हिज़ साल्ट" का प्रयोग किया जाता था ।

नमक जीवन के लिये एक अत्यावश्यक खनिज है । एक असाधारण और प्रभावकारी खाद्य-परिरक्षक भी है, ोंकि यह खराबी पहुँचाने वाले सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को ता है और प्रसीतन के पहले भोजन - संग्रहण को संभव ता है ।

नमक का प्रयोग भोज्य पदार्थों के अतिरिक्त ग्लास, ा, प्लास्टिक, पेपर, पेंट, सिंथेटिक रबर, कास्मेटिक्स, धियों, बैटरी आदि बनाने में भी किया जाता है ।

मानव - शरीर की कार्यप्रणाली के लिए नमक की त आवश्यकता पड़ती है । नमक यानी सोडियम राइड (39 प्रतिशत सोडियम और 61 प्रतिशत राइड) । शरीर मे नमक का घोल, सोडियम और राइड दो अलग - अलग घटकों में विभक्त हो जाता है और दोनों के अलग-अलग कार्य होते हैं । क्लोराइड कोशा और इसके वातावरण के मध्य जल का संतुलन बनाए रखता है । यह पाचन मे अपनी भूमिका अदा करता है और सोडियम के साथ जुड़ाकर रक्त का अम्ल-क्षार संतुलन बनाए रखता है, जो जीवन के लिए महत्वपूर्ण है । सोडियम रक्त की मात्रा और रक्त-चाप के नियंत्रण में बहुत सहायक होता है । यह तंत्रिका-वेग के संचरण में मदद करता है तथा हृदय व पेशियों के संकुचन के लिए बहुत जरूरी है । बहुत कम नमक से पेशियों में ऐंठन और मिचली की शिकायत हो जाती है और शरीर की प्रतिरोध-शक्ति कम हो जाती है । शल्य-क्रिया के दौरान नमक का जीवंत घोल रोगियों की शॉक से रक्षा करता है .

विशेषज्ञों का कहना है कि एक सामान्य व्यक्ति के लिए नमक की संयत मात्रा (4 से 10 ग्राम ही प्रतिदिन सेवन करनी चाहिए । इस नमक की 1 से 2 ग्राम मात्रा तो भोज्य पदार्थों में मौजूद प्राकृतिक सोडियम से ही प्राप्त हो जाती है, शेष मात्रा भोजन बनाते समय या खाने के समय अलग से प्रयुक्त की जा सकती है । शरीर में नमक की मात्रा को गुर्दे नियंत्रित करते है ।

पिछले कुछ वर्षों में नमक के बारे में अनेक विपरीत बातें सुनने में आईं । कहा जाता है की स्वास्थ्य कैसा भी हो अधिक नमक शरीर के लिए हानिकारक है । यू. एस. फूड एंग ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन के जूनियर फार्मर कमिशनर, डाक्टर आर्थर हल हेज़ के अनुसार "हम अपने भोजन में नमक की अधिक अधिक से कटौती कर लाभ उठा सकते हैं । यह भी कहा जाता है कि एक व्यक्ति द्वारा खाए जाने वाले सोडियम की मात्रा का हृदय-रोग, रक्त-संचार संबंधी विकार, स्ट्रोक एवं समय-पूर्व मृत्यु से सीधा संबंध होता है । इसके विपरीत

अल्बामा युनिवर्सिटी के कार्डियोवेस्कुलर रिसर्च और ट्रेनिंग सेंटर की निवृत्तमान डायरेक्टर डाक्टर हैरिअट डस्टन कहती हैं की हममें से अधिकतर लोग जितने नमक का सेवन करते हैं, उससे संभवत: कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता । उन्होंने हाल ही में डेढ़ सौ व्यक्तियों पर अध्ययन किया गया । इसके अंतर्गत सामान्य रक्त-चाप वाले व्यक्तियों को पहले नमक की अत्यधिक कम मात्रा दी गई । बाद में नमक फिर से चालू कर दिया गया । देखा गया कि इससे उन व्यक्तियों में कोई भी परिवर्तन नही हुआ । अति-रक्त-चाप वाले व्यक्तियों में से केवल आधे व्यक्तियों में अवश्य ही कम-नमक के भोजन से रक्त-चाप कम हुआ ।

अन्य अध्ययनों से भी डस्टर की खोजों को समर्थन मिलता है । स्माल-इंडियाना में हुए अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि सामान्य व्यक्तियों को नमक की बहुत अधिक मात्रा देने से भी उनका रक्त-चाप अति उच्च स्तर तक नहीं जा पाता है । इजराइल में हुए अध्ययन में भारी वजन और अति-रक्त-चाप वाले व्यक्तियों को नमक की मात्रा में कमी किए बिना कम-कैलोरी वाला आहार दिया गया । पता चला कि उनके रक्त-चाप में कमी आती है अर्थात रक्त-चाप में कमी का कारण कम-कैलोरी वाला आहार था, न कि नमक ।

उच्च-रक्त-चाप के अग्रणी विशेषज्ञ और हाइपरटेंशन सेंटर न्यूयार्क हॉस्पीटल व कार्नेल मेडिकल सेंटर के प्रधान डॉ. जॉन लॉरा के अनुसार "सामान्य जन-समुदाय द्वारा पर्याप्त व पर्याप्त से कुछ अधिक मात्रा के सेवन से संभवत: जीवन-रक्षा ही अधिक हुई है ।"

यकृत, गुर्दे या हृदय के रोगियों को यदि डाक्टर सलाह दे तो कम नमक लेना पड़ सकता है । किंतु अति-रक्त-चाप के संबंध में वैज्ञानिक को ऐसे प्रमाण भी मिले हैं कि इसके कारणों में कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम की कमी, मोटापा, आनुवंशिक वृत्ति, स्ट्रोक आदि भी शामि हैं ।

ओरेगान हेल्थ साइन्सेस यूनिवर्सिटी के नेफ्रोलॉ व हायपरटेंशन प्रभाग के सह-प्रधान डेविड हैक कैरन चेतावनी दी है कि "नमक कम करने के बारे में प्रचार लोगों को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक उठानी प सकती है । वर्तमान स्थिति में इस प्रकार का प्रचार भविष्य समस्याएँ खड़ी कर सकता है ।" डा. मैक कैरन की खोज यह भी संकेत मिलता है कि कैल्शियम की कमी भी उ रक्त-चाप का एक कारण हो । उनके अनुसार यदि लोग अ सोडियम अंतर्ग्रहण को नियंत्रित करने का प्रयत्न करेंगे, हो सकत है उनका रक्त-चाप बढ़ जाए ।

इंडियाना यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन डाक्टर माइनर वेनबर्जर और डाक्टर फ्रेड लेफ्ट ने पाया कुछ रोगियों में रक्त-चाप उस समय बढ़ जाता है जब उ कम-नमक वाले आहार और मूत्रवर्धक औषधियों पर र जाता है । इससे हृदय संबंधी रोगों, स्ट्रोक एवं अ स्वास्थ संबंधी खतरे भी बढ़ जाते हैं ।

नमक के सेवन और स्वास्थ में लेकर हुई खो का सार डा. लॉरा के इस कथन समाहित है : "नमक आप शत्रु नहीं है, यह मानव ऊतक का सबसे प्रमुख प्राकृति घटक है । यह सोचना गलत है कि हमें नमक आवश्यकता नहीं है । जब तक आपका डाक्टर इस निष्क पर नही पहुँचता कि आपकी बीमारी नमक के कारण है, इ छोड़ने का कोई औचित्य नहीं दिखाई पड़ता है ।"

बालकृष्ण काबारा "एतेश
सूर्या एपार्टमेंट, प्लाट नं. 1
रिंग रोड, राणाप्रताप नग
नागपुर (महाराष्ट्र) 440 02

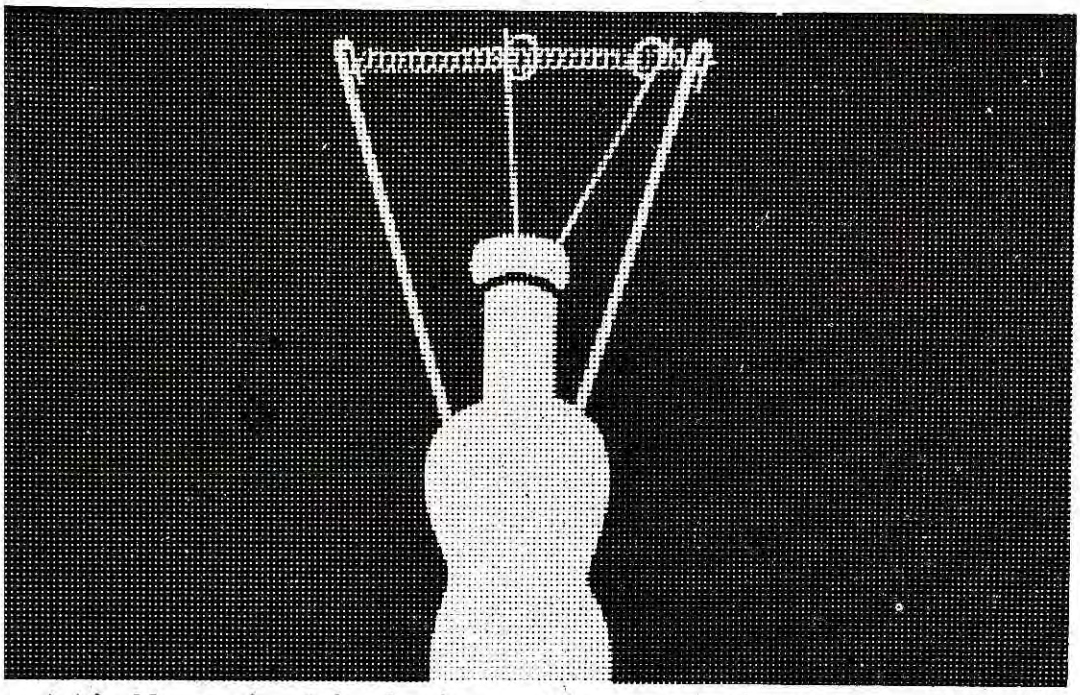

Midhani. Lighting the path to self-reliance in special metals and alloys.

Midhani is India's first and only special alloys plant manufacturing the entire range of special metals and alloys needed by various industries.

For instance, molybdenum, tungsten and high purity nickel for the lamp industry.

The basic production technology has been acquired from reputed foreign organisations like Creusot-Loire and Pechiney-Ugine-Kuhlmann of France and Krupp Kloeckner A of West Germany. Midhani also has the latest equipment and quality control facilities to ensure that all Midhani alloys meet international standards in quality and performance.

Some of the unique production facilities are the powder metallurgy shop for compacting, sintering, swaging and wire drawing of molybdenum and tungsten products, sophisticated melting and refining furnaces, precision forging, rolling and wire drawing equipment and a central quality control laboratory.

Midhani's product range includes iron, nickel and cobalt based superalloys, special purpose steels, titanium and titanum alloys, electrical and electronic alloys including electrical resistance alloys and powder metallurgy products.

MIDHANI

Mishra Dhatu Nigam Limited
(A Government of India Enterprise)
Kanchanbagh Hyderabad 500 258

Sista's/Midhani/153/84

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद के लिए **डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल** द्वारा संपादित तथा
डा. शिव प्रकाश गर्ग द्वारा मानस प्रिन्टेटस और एजंसीस, घाटकोपर, बम्बई में मुद्रित व प्रकाशित

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COM

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-N